फागू साव

बनाम्

पश्चिमी बंगाल राज्य

(Fagu Shaw

Vs.

The State of West Bengal)

(20 दिसम्बर, 1973)

(मुख्य न्यायाधिपति ए० एन० रे और न्या० के० के० मैथ्यू, वाई० वी० चन्द्रचूड़ और पी० एन० भगवती)

संविधान—अनुच्छेद 22 (4) (क) का परन्तुक और 22 (7) (ख) —अनुच्छेद 22 (4) (क) के परन्तुक के लागू होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि संसद् अनुच्छेद 22 (7) (ख) के अधीन निवारक निरोध की 'अधिकतम कालावधि' विहित करे।

आन्तरिक सुरक्षा बनाए रखने का अधिनियम, 1971 (1971 का 26)—धारा 13—[सपठित संविधान का अनुच्छेद 22 (7) (ख)] —धारा 13 में निवारक निरोध के लिए 'अधिकतम कालावधि' के रूप में 'तीन वर्ष या आपात की समाप्ति, इन में से जो भी पश्चात्वर्ती हो' विहित करने से उक्त अनुच्छेद 22 (7) (ख) का अनुपालन हो गया है—'अधिकतम कालावधि' की बाबत विधान न केवल वर्ष, मास या दिनों के प्रति निर्देश से वरन् विनिर्दिष्ट घटनाओं के घटने के प्रति निर्देश से भी किया जा सकता है—'आपात् की समाप्ति' पद के प्रयोग से एक निश्चित कालावधि का संकेत मिलता है, अतः वह 'अधिकतम कालावधि' के रूप में विधिमान्यतः स्वीकार की जा सकती है।

संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किए गए प्रस्तुत रिट पिटीशन में पिटीशनरों ने अपने निरोध की वैधता पर आपत्ति की है और हैबियस कारपस की प्रकृति के रिट जारी किए जाने की प्रार्थना की है। इन पिटीशनों में मुख्यतः एक ही सांविधानिक प्रश्न उत्पन्न हुआ है, अर्थात् क्या संविधान के अनुच्छेद 22 (4) (क) के परन्तुक के प्रवृत्त होने के लिए संसद संविधान के अनुच्छेद 22 (7) (ख) के अधीन निरोध की अधिकतम कालावधि विहित

करने के लिए बाध्य है और क्या भारत रक्षा अधिनियम, 1971 की धारा 6(घ) द्वारा यथासंशोधित आन्तरिक सुरक्षा बनाए रखने का अधिनियम, 1971 (1971 का 26) की धारा 13 द्वारा संसद ने उक्त 'अधिकतम कालावधि' विहित कर दी है।

पिटीशनरों की दलीलें थीं कि संसद् अनुच्छेद 22 (4) (क) के परन्तुक के प्रवर्तन के लिए संविधान के अनुच्छेद 22 (7) (ख) के अधीन निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करने के लिए बाध्य है और चूंकि अधिनियम की यथासंशोधित धारा 13 द्वारा निरोध की अधिकतम कालावधि विहित नहीं की गई है, अत: अधिनियम की धारा 13 की शर्तों के अनुसार निरोध आदेश की पुष्टि अवैध है।

प्रत्यर्थी की ओर से निवेदन किया गया है कि अधिनियम की धारा 13 में संसद् ने निरोध की 'अधिकतम कालावधि' विहित कर दी है और विकल्पत: संसद् अनुच्छेद 22 (4) (क) के परन्तुक के प्रवर्तन के लिए निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करने के लिए बाध्य नहीं है। अपील खारिज करते हुए बहुमत से (न्यायाधिपति अलगिरिस्वामी ने असहमति प्रकट की और न्या० भगवती ने पृथक् निर्णय दिया)।

अभिनिर्धारित—सप्तम अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 3 के अधीन उल्लिखित विषयों की बाबत निवारक निरोध के लिए विधि बनाने के लिए संसद् और राज्य विधानमण्डल को सर्वांगीण शक्ति प्रदान की गई है। इसी शक्ति की आनुषंगिक शक्ति के रूप में अथवा उसके अभिन्न अंग के रूप में संसद् और राज्य विधान-मण्डल को निरोध की अवधि नियत करने की भी शक्ति दी गई है। कोई भी निरोध-विधि बनाने की ऐसी शक्ति का अनुमान नहीं लगा सकता जिससे निरोध की कालावधि उपबन्धित करने की शक्ति सम्बद्ध न हो। अत: संसद् और राज्य विधानमण्डल दोनों को ही उक्त प्रविष्टि के अधीन किसी विनिर्दिष्ट कालावधि के लिए किसी व्यक्ति के निरोध हेतु उपबन्ध करने की शक्ति है। अनुच्छेद 22 (4) (क) का प्रयोजन उक्त शक्ति को निर्बन्धित करना है, अर्थात्, उस पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया है कि कोई विधि किसी भी व्यक्ति के निरोध को तीन मास की कालावधि से अधिक के लिए तब तक प्राधिकृत नहीं कर सकती है जब तक कि सलाहकार बोर्ड उक्त कालावधि के अन्दर यह रिपोर्ट न दे दे कि निरोध के लिए पर्याप्त कारण हैं। परन्तुक का अर्थ यह है कि यदि सलाहकार बोर्ड तीन मास के अवसान से पूर्व यह रिपोर्ट दे भी दे कि निरोध के लिए पर्याप्त आधार हैं, तो भी तीन मास के आगे निरोध की कालावधि

अनुच्छेद 22 (7)(ख) के अधीन संसदीय विधि द्वारा नियत अधिकतम कालावधि से अधिक न होगी। परन्तुक का अर्थ यह नहीं हो सकता कि यदि संसद् अनुच्छेद 22 (7)(ख) के अधीन अधिकतम कालावधि नियत नहीं भी करती है तो भी राज्य विधानमण्डल ऐसी विधि पारित नहीं कर सकता जो निरोध की तीन मास से अधिक की कालावधि उपबन्धित करती है। (पैरा 10)

अतः यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (4) (क) के परन्तुक को छोड़कर, अधिनियम, चूंकि सलाहकार बोर्ड की राय की बाबत उपबन्ध करता है, प्रविष्टि द्वारा प्रदत्त विधायी शक्ति की सर्वांगीण प्रकृति के कारण किसी भी कालावधि के लिए किसी व्यक्ति के निरोध को प्राधिकृत कर सकता है। यह प्रश्न पूर्णतः एक भिन्न प्रश्न है कि क्या ऐसी विधि को इस आधार पर अवैध घोषित किया जा सकता है कि वह अनुच्छेद 19 के अधीन मूल अधिकारों पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करती है। तथ्यतः परन्तुक का प्रभाव यह है कि यदि संसद् अनुच्छेद 22 (7) (ख) के अधीन अधिकतम कालाविधि विहित कर देती है तो उस सीमा तक उस प्रविष्टि के अधीन निरोध की कालावधि नियत करने की बाबत संसद् और राज्य विधानमण्डल की शक्ति सीमित हो जाती है। दूसरे शब्दों में, चूंकि प्रविष्टि के अधीन संसद् और राज्य विधानमण्डल को ऐसी विधि पारित करने की शक्ति प्राप्त है जो सलाहकार बोर्ड की राय के लिए उपबन्ध होने की दशा में किसी व्यक्ति के तीन मास से अधिक के निरोध को प्राधिकृत करती हो, तो उस दशा में के सिवाय कि उसकी युक्तियुक्तता देखी जा सकती है, निरोध की कालावधि की कोई सीमा ही न रह जाएगी क्योंकि निरोध को कालावधि नियत करने की शक्ति निवारक निरोध के शीर्ष के अधीन सर्वांगीण विधायी शक्ति की अनुषंगी है। परन्तुक संसद् को अनुच्छेद 22 (7) (ख) के अधीन निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करने की शक्ति देकर निरोध को निर्बन्धित करने की शक्ति प्रदान करता है। परन्तुक स्वयं अधिकतम कालावधि विहित करने के लिए संसद् को विवश नहीं करता है। हमारे विचार से ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है जो संसद् को प्रत्यक्षतः या परोक्षतः ऐसा करने के लिए बाध्य करती हो। (पैरा 11 और 12)

प्रस्तुत मामले में प्रश्न सम्बन्धित अनुच्छेद के निष्पक्ष निर्वचन का है और हम उस अनुच्छेद में यह बाध्यता निहित नहीं कर सकते कि संसद् निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करने के लिए बाध्य है। ऐसी बाध्यता तो वैयक्तिक स्वतंत्रता के अस्पष्ट और काल्पनिक सिद्धांत से व्युत्पन्न अदृश्य विकीर्णन से उद्भूत मानी जा सकती है। अनुच्छेद 22 (4) (ख) की भाषा परन्तुक के साथ पठित अनुच्छेद 22 (4)(क) की भाषा से पूर्णतः प्रतिकूल है। अनुच्छेद 22(4) (क)

1973(12) eILR(PAT) SC 114

संसद् के लिए यह बाध्यकर बनाता है कि यदि वह तीन मास के अन्दर सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त करने के लिए सम्बन्धित विधि में कोई उपबन्ध किए बिना तीन मास से अधिक की अवधि के लिए किसी व्यक्ति को निरोध में रखने के लिए विधि पारित करना चाहती है तो उसे अनुच्छेद 22 (7) के उपखण्ड (क) और (ख) का अनुपालन करना होगा। (पैरा 13)

यदि यह मान भी लें कि संसद् निरोध की अधिकतम कालावधि नियत करने के लिए बाध्य है तो भी ऐसा नियतन अपरिवर्तनीय नहीं है। अतः यदि संसद् की इच्छानुसार ऐसा नियतन परिवर्तित किया जा सकता है तो संसद् द्वारा निरोध की अधिकतम कालावधि के नियतन से वैयक्तिक स्वतन्त्रता की क्या गारण्टी रह जाती है ? (पैरा 16)

"अधिकतम" (मेक्सिमम) शब्द का अर्थ है "(किसी वस्तु का) उच्चतम प्राप्तव्य स्तर या मात्रा ; वरिष्ठ सीमा [शार्टर आक्सफोर्ड डिक्शनरी, पृष्ठ 1221,(1953) तृतीय संस्करण]। 'कालावधि' शब्द का अर्थ है समय का अनुक्रम या विस्तार ; समय या अवधि (शार्टर आक्सफोर्ड डिक्शनरी पृष्ठ 1474)। अतः "अधिकतम कालावधि" पद का अर्थ है समय का उच्चतम या महत्तम अनुक्रम या विस्तार या प्रसार समय के उच्चतम या महत्तम अनुक्रम या विस्तार या प्रसार की माप वर्षों, मासों या दिनों में की जा सकती है और साथ ही किसी घटना के या परिस्थितियों के चालू बने रहने के रूप में भी की जा सकती है। (पैरा 19)

हम यह आवश्यक नहीं समझते हैं कि संसद् को वर्षों, मासों या दिनों में कालावधि नियत करनी चाहिए थी जिससे कि अनुच्छेद 22 (7) (ख) के प्रयोजन के लिए वह "अधिकतम कालावधि" हो जाती। यह देखते हुए कि निवारक निरोध का उद्देश्य किसी व्यक्ति को ऐसी रीति में कार्य करने से रोकना है, जिसका आन्तरिक सुरक्षा या लोक व्यवस्था या समुदाय के लिए आवश्यक सेवाएं और प्रदाय बनाए रखने पर या सप्तम अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 9 में विनिर्दिष्ट बातों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो, हमें विद्वान् महा न्यायवादी की इस दलील में बड़ा बल लगता है कि अनुच्छेद 22 (7)(ख) में 'अधिकतम कालावधि' आपात्काल के निर्देश में नियत की जा सकती है। दूसरे शब्दों में, चूंकि निवारक निरोध का उद्देश्य किसी व्यक्ति को ऐसी किसी रीति में कार्य करने से रोकना है जिसका आन्तरिक सुरक्षा या लोक व्यवस्था या समुदाय के लिए आवश्यक प्रदायों या सेवाएं बनाए रखने पर या सूची 1 की प्रविष्टि 9 में विनिर्दिष्ट बातों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो, अतः उक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निरोध की शक्ति अवधि की दृष्टि से पर्याप्त होनी चाहिए। और अवधि

की दृष्टि से कोई शक्ति पर्याप्त कैसे हो सकती है यदि वह युद्ध या लोक व्यवस्था या समुदाय के लिए आवश्यक प्रदाय या सेवाओं में कमी के कारण कारित आपात् का मुकाबला नहीं कर सकती है तथा जिसे वर्षों, मासों या दिनों के रूप में अतिदूरदर्शी व्यक्तियों द्वारा भी निश्चित नहीं किया जा सकता है। यदि "अधिकतम कालावधि" केवल वर्षों, मासों या दिनों में नियत की जा सकती है तो संसद् धारा 13 में और अधिक लम्बी कालावधि नियत कर सकती थी और उसे 'अधिकतम कालावधि' के रूप में न्यायोचित ठहरा सकती थी। यह बात तो बहुत विचित्र होगी कि आपातकाल के निर्देश में निरोध की अधिकतम कालावधि के नियतन से तो किसी को धक्का लगे और ऐसी 'अधिकतम कालावधि' से उसे सन्तोष हो जाए जो पन्द्रह या बीस वर्ष की हो। यह प्रश्न पूर्णतः भिन्न है कि वर्षों के रूप में या घटनाओं पर आधारित "अधिकतम कालावधि" किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में युक्तियुक्त है या नहीं। (पैरा 21)

आपात्काल की समाप्ति जैसी घटना के निर्देश में निरोध की अधिकतम कालावधि नियत करके संसद् ने न तो किसी भी रूप में अधिकतम कालावधि नियत करने के अपने कृत्य या शक्ति का अधित्यजन किया है और न ही उसने अपनी उक्त शक्ति राष्ट्रपति को प्रत्यायोजित की है। निस्संदेह संसद् ने ही धारा 13 में अधिकतम कालावधि नियत की है। प्रश्न केवल यह है कि क्या कालावधि की अवधि राष्ट्रपति की इच्छा पर आधारित होने के कारण "अधिकतम कालावधि" नहीं रह गई है। यह उपधारणा नहीं की जा सकती कि राष्ट्रपति अयुक्तियुक्त रूप से आपात् की उद्घोषणा आपात् की समाप्ति के पश्चात् भी चालू रखेंगे। (पैरा 23)

पिटीशनरों ने तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 13 इस दृष्टि से अवैध है कि वह संविधान के अनुच्छेद 19 के अधीन उनके मूल अधिकारों का अतिक्रमण करती है। वे ऐसा आक्षेप नहीं कर सकते हैं क्योंकि आपात् उद्घोषणा ऐसी आपत्ति को वर्जित करती है। (पैरा 24)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1973]	1973 एस० सी० सी० 856=[1973] 3 उम० नि० प० 411 : **शम्भूनाथ सरकार** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** (Shambhu Nath Sarkar *Vs.* State of West Bengal);	39

[1973]	ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 2555 : मैसूर राज्य बनाम आर० वी० बिदप (State of Mysore *Vs.* R.V. Bidap);	42
[1972]	1972 (1) एस० सी० सी० 199 : पश्चिमी बंगाल राज्य बनाम अशोक डे और अन्य (State of West Bengal *Vs.* Ashok Dey and Others);	6,13,29, और 50
[1972]	ए० आई० आर० 1972 एस० सी० 2431 : सना उल्लाह बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य (Suna Ullah *Vs.* State of Jammu and Kashmir);	24
[1967]	(1967) 2 एस० सी० आर 650 : बी० शाम राव बनाम पाण्डीचेरी संघ राज्यक्षेत्र (B. Shama Rao *Vs.* The Union Territory of Pondecherry);	22
[1958]	1958 एस० सी० आर० 460 : पूरणलाल लखनपाल बनाम भारत संघ (Puranlal Lakhanpal *Vs.* Union of India);	39 और 44
[1951]	(1951) एस० सी० आर० 621 : कृष्णन बनाम मद्रास राज्य (Krishnan *Vs.* The State of Madras);	5,6,13, 24,28 और 49
[1950]	(1950) एस० सी० आर० 88 : ए० के० गोपालन बनाम मद्रास राज्य (A.K. Gopalan *Vs.* State of Madras);	4,5,6,27, और 39
[1946]	ए० आई० आर० 1946 मुम्बई 280 : जुग्गीलाल कमलापत बनाम कलक्टर, मुम्बई (Juggilal Kamlapat *Vs.* Collector, Bombay);	19
[1945]	326 यू० एस० 376 : ब्रिजेज वाला मामला (Bridges Cases);	54

[1926] (1926) 274 यू० एस० 357-380 :
ह्विटने वाला मामला (Whitney's Case); 54

[1879-80] (1879-80) 5 अपील केसेज 214 :
जूलियस बनाम बिशप ऑफ आक्सफोर्ड (Julius *Vs.* Bishop of Oxford); 27

आरम्भिक अधिकारिता : 1973 के रिट पिटीशन संख्या 41, 106, 113, 214, 441 और 621.

हैबियस कार्पस का रिट जारी किए जाने के लिए संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किए गए पिटीशन।

पिटीशनर की ओर से (रिट पिटीशन सं० 41 में)	श्री आर० के० महेश्वरी (न्याय-मित्र)
पिटीशनर की ओर से (रिट पिटीशन संख्या 106 और 113 में)	श्री ए० के० गुप्ता (न्याय-मित्र)
पिटीशनर की ओर से (रिट पिटीशन संख्या 441 और 214 में)	श्री एम० एस० गुप्ता (न्याय-मित्र)
पिटीशनर की ओर से (रिट पिटीशन संख्या 621 में)	श्री टी० एस० अरोड़ा (न्याय-मित्र)
प्रत्यर्थी की ओर से (रिट पिटीशन संख्या 106 में)	श्री नीरेन डे, भारत के महान्यायवादी और श्री डी० एन० मुखर्जी
प्रत्यर्थी की ओर से (रिट पिटीशन संख्या 113 और 441 में)	श्री दिलीप सिन्हा
प्रत्यर्थी की ओर से (रिट पिटीशन संख्या 214 में)	श्री एम० एम० क्षत्रीय

प्रत्यर्थी की ओर से (रिट पिटीशन संख्या 41 में)	सर्वश्री पी० के० चटर्जी और जी० सी० चटर्जी
भारत के महान्यायवादी की ओर से	श्री नीरेन डे, भारत के महान्यायवादी और श्री आर० एन० सचदे
मध्यक्षेपी संख्या 1 की ओर से	
मध्यक्षेपी संख्या 2 की ओर से	मैसर्स राममूर्ति एण्ड कम्पनी

न्यायालय का बहुमत निर्णय न्यायाधिपति के० के० मैथ्यू ने दिया।

न्यायाधिपति मैथ्यू—

संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किए गए प्रस्तुत रिट पिटीशनों में पिटीशनरों ने अपने निरोध की वैधता पर आपत्ति की है और हैबियस कारपस की प्रकृति का रिट जारी किए जाने की प्रार्थना की है। इन पिटीशनों में समान सांविधानिक प्रश्न उत्पन्न हुआ है, अर्थात् क्या संसद् अनुच्छेद 22 (4) (क) के परन्तुक के प्रवृत्त होने के लिए संविधान के अनुच्छेद 22 (7) (ख) के अधीन निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करने के लिए बाध्य है और भारत रक्षा अधिनियम, 1971 की धारा 6 (घ) द्वारा यथा संशोधित आन्तरिक सुरक्षा बनाए रखने का अधिनियम, 1971 (1971 का 26) की धारा 13 द्वारा संसद् ने उक्त 'अधिकतम कालावधि' विहित कर दी है।

2. पिटीशनरों की दलीलें थीं कि संसद् अनुच्छेद 22 (4) (क) के परन्तुक के प्रवर्तन के लिए संविधान के अनुच्छेद 22 (7) (ख) के अधीन निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करने के लिए बाध्य थी और चूंकि अधिनियम की यथासंशोधित धारा 13 द्वारा निरोध की अधिकतम कालावधि विहित नहीं की गई है, अतः अधिनियम की धारा 13 की शर्तों के अनुसार निरोध आदेश की पुष्टि अवैध है।

3. विद्वान् महा न्यायवादी ने, जो इन पिटीशनों में प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर हुए हैं, निवेदन किया है कि अधिनियम की धारा 13 में संसद् ने निरोध की अधिकतम कालावधि विहित कर दी है। और विकल्पतः उन्होंने यह कहा है कि संसद् अनुच्छेद 22 (4) (क) के परन्तुक के प्रवर्तन के लिए निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करने के लिए बाध्य नहीं है।

4. **ए० के० गोपालन** बनाम **मद्रास राज्य**[1] में मुख्य न्या० कानिया ने कहा है कि चूंकि अनुच्छेद 22 (7) (ख) अनुज्ञात्मक (परमिसिव) है, अतः संसद् के लिए अधिकतम कालावधि विहित करना बाध्यकर नहीं है और यह कि यदि इस अर्थान्वयन के परिणामस्वरूप ऐसी संसदीय विधि बनाई जा सकती है जिसके अधीन किसी भी व्यक्ति को विचारण किए बिना अनिश्चित कालावधि तक निरुद्ध रखा जा सकता है तो ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम अनुच्छेद 22 (7) की शब्दावली के कारण कारित हुआ है और यह कि न्यायालय इस बारे में कुछ नहीं कर सकते ।

5. **कृष्णन** बनाम **मद्रास राज्य**[2] में निवारक निरोध (संशोधन) अधिनियम, 1951 की धारा 11 को अनुच्छेद 22(4)(क) की अतिक्रमणकारी इस आधार पर कहा गया था कि धारा 11 द्वारा अधिकतम कालावधि विहित नहीं की गई थी। इसके प्रतिकूल उसके द्वारा सरकार को यह आदेश करने की शक्ति दे दी गई थी कि निरुद्ध व्यक्ति को वह तब तक निरुद्ध रख सकती है जब तक वह उचित समझे। न्यायालय ने बहुमत से यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 11 इस आधार पर अविधिमान्य नहीं है कि उसके द्वारा निरोध की अधिकतम कालावधि विहित नही की गई है क्योंकि अधिनियम केवल एक वर्ष तक प्रवृत्त रहना था और उस अधिनियम के अधीन किया गया कोई भी निरोध अधिनियम के अवसान के पश्चात् चालू नहीं रखा जा सकता था। न्या० महाजन ने यह बताया था कि यह प्रश्न **गोपालन वाले मामले में**[1] तय हो चुका है, जिसमें मुख्य न्या० कानिया ने यह मत व्यक्त किया है कि संसद् कोई भी अधिकतम कालावधि विहित करने के लिए बाध्य नहीं है। दूसरी ओर न्या० बोस ने जिन्होंने विसम्मत निर्णय दिया था, कहा था कि यद्यपि संसद् के लिए यह बाध्यकर नहीं है कि वह अनुच्छेद 22 (7) (ख) के अधीन निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करे, तथापि यदि वह किसी व्यक्ति को तीन मास से अधिक के लिए निरुद्ध रखना चाहे तो वह ऐसा अधिनियम में निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करके ही कर सकती है।

6. **पश्चिमी बंगाल राज्य** बनाम **अशोक डे और अन्य**[3] में मुख्य प्रश्न यह था कि क्या राज्य विधानमण्डल को निरोध के लिए पर्याप्त हेतुक होने की बाबत सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त करने के पश्चात् तीन मास से अधिक का निरोध

---

[1] 1950 एस० सी० आर० 88.

[2] 1951 एस० सी० आर० 621.

[3] (1972) 1 एस० सी० सी० 199.

उपबंधित करने वाली निवारक निरोध सम्बन्धी विधि उस दशा में भी बनाने की शक्ति प्राप्त है जब कि संसद् ने अनुच्छेद 22 (7) (ख) के अधीन निरोध की अधिकतम कालावधि विहित न की हो। दलील यह थी कि ऐसी कोई शक्ति उसे प्राप्त नहीं है। न्यायालय ने दलील नामंजूर कर दी और यह कहा कि अनुच्छेद 22 (7) अनुज्ञात्मक है आज्ञापक नहीं और यह कि **गोपालन वाले मामले में**[1] मुख्य न्या० कानिया के मत का अनुसरण करते हुए **कृष्णन् के मामले में**[2] दिया गया विनिश्चय न्यायालय पर आबद्धकर है। न्यायालय ने यह भी कहा कि सप्तम अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 3 के अधीन संसद् और राज्य विधानमण्डल दोनों को ही, राज्य की सुरक्षा, लोक व्यवस्था बनाए रखने या समुदाय के लिए आवश्यक प्रदाय एवं सेवाएं बनाए रखने तथा ऐसे निरोध के अधीन वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में निवारक निरोध सम्बन्धी विधि बनाने की समवर्ती शक्ति प्राप्त है; और चूंकि संविधान द्वारा अधिरोपति सीमाओं के अन्दर निवारक निरोध उपबंधित करने वाली विधि बनाने के लिए राज्य-विधानमण्डल को सर्वांगीण शक्ति प्राप्त है, अतः केवल इस शर्त के अध्यधीन रहते हुए, कि एक ही विषय पर राज्य द्वारा बनाई गई विधि संसद् द्वारा बनाई गई विधि के प्रतिकूल न हो, यह शक्ति इस सूची द्वारा यथानुध्यात निवारक निरोध के आनुषंगिक सभी बातों तक विस्तारित है। न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि तीन मास से आगे की कालावधि के निरोध के लिए उपबंध करने वाली विधि बनाने की राज्य विधानमण्डल की शक्ति पर इस दृष्टि से कोई निर्बन्धन नहीं है कि अनुच्छेद 22 (7) (ख) के अधीन निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करने वाली विधि नहीं बनाई गई है।

7. **कृष्णन् वाले मामले में**[2] न्यायाधिपति बोस के विसम्मत निर्णय में अन्तर्विष्ट तर्क का पिटीशनरों ने इस प्रस्थापना के समर्थन में गंभीर रूप से अवलम्ब लिया है कि संसद् विधि द्वारा निरोध की अधिकतम कालावधि नियत करने के लिए आबद्ध है, जिससे कि अनुच्छेद 22 (4) (क) का परन्तुक प्रवृत्त हो सके।

8. न्यायाधिपति बोस के मतानुसार किसी व्यक्ति के तीन मास की कालावधि से अधिक लम्बी कालावधि के निरोध के लिए उपबंध करने वाली विधि को अनुच्छेद 22 के या तो खण्ड (4) (क) की अपेक्षाओं की पूर्ति करनी होगी या फिर खण्ड (4) (ख) की। किन्तु फिर भी विद्वान् न्यायाधिपति

---

[1] 1950 एस० सी० आर० 88.

[2] 1951 एस० सी० आर० 621.

अनुच्छेद 22 के खण्ड (7) में प्रयुक्त "सकती है" (में) शब्द का अर्थ "करेगी" (मस्ट) लगाने के लिए तैयार नहीं थे क्योंकि उससे शब्द का सामान्य अर्थ बदल जाएगा। उनका मत था कि अनुच्छेद 22 (7) (ख) के अधीन निरोध की अधिकतम कालावधि उपबंधित करने या न करने के लिए स्वतंत्र है और यह कि न तो संसद् और न राज्य विधानमण्डल ही को ऐसी विधि पारित करने के लिए विवश किया जा सकता है जो तीन मास से अधिक के निवारक निरोध को प्राधिकृत करती हो, किन्तु यदि संसद् या उक्त राज्य विधानमण्डल ऐसा करना चाहें तो उसे अनुच्छेद 22 (4) के उपखण्ड (क) या (ख) के या दोनों के ही उपबंधों का अनुपालन करना होगा और यह कि उपखण्ड (क) की दशा में परन्तुक उपखण्ड का उसी प्रकार एक भाग है जिस प्रकार कि उसका मुख्य उपबंध है। तत्पश्चात् विद्वान् न्यायाधिपति ने कहा कि यदि अनुच्छेद 22 (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन अधिकतम कालावधि विहित नहीं की जाती है तो अनुच्छेद 22 (4) (क) का परन्तुक प्रवृत्त नहीं हो सकता है और यदि वह प्रवृत्त नहीं होता है तो खण्ड (4) (क) के अधीन कोई भी विधायी कार्यवाही नहीं की जा सकती है। उन्होंने कहा कि "यदि क से ख ने कहा कि वह बैंक जा सकता है और वहां से उस सीमा से अनधिक रकम निकाल सकता है जैसी कि ग नियत करे, तो यह स्पष्ट है कि जब तक ग सीमा नियत नहीं करता तब तक कोई भी रकम निकाली नहीं जा सकती। इसी प्रकार यदि क से यह कहा जाता है कि वह उस सीमा तक रकम निकाल सकता है जहां तक कि वह स्वयं नियत करे, तो मेरी राय से, जब तक वह सीमा नियत नहीं कर दी जाती, वह कोई रकम नहीं निकाल सकता"। उन्होंने अपने निर्णय का निष्कर्ष निकालते हुए कहा कि बहुमत निर्णय के अनुसार संविधान द्वारा देशवासियों से यह कहा गया है कि : "यद्यपि हम संसद् को, यदि वह चाहे तो, निरोध की अधिकतम सीमा विहित करने के लिए प्राधिकृत करते हैं तथापि हम उसे ऐसा करने के लिए विवश नहीं करते हैं किन्तु हम उसे ऐसा विधान पारित करने के लिए प्राधिकृत करते हैं जिसके अधीन कोई व्यक्ति या प्राधिकारी, जिसे संसद् नामित करना चाहे, पुलिस कान्स्टेबिल को यह लिख सके कि वह आप को गिरफ्तार कर ले और उस समय तक निरुद्ध रखे जब तक वह चाहे—यहां तक कि आपको जीवनपर्यन्त निरुद्ध रखे जिससे कि आप अपनी मृत्यु तक जेल में सड़ते रहें—जैसा कि बैसली में किया गया है।"

9. हमारे विचार से विद्वान् न्यायाधिपति ने जो विषमताएं दर्शित की हैं वे तथ्यतः भ्रामक हैं और उनका तर्क समाधानकारी नहीं है।

10. सप्तम अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 3 के अधीन उसमें उल्लिखित विषयों की बाबत निवारक निरोध के लिए विधि बनाने के लिए संसद् और राज्य विधानमण्डल को सर्वांगीण शक्ति प्रदान की गई है। इसी शक्ति को आनुषंगिक शक्ति के रूप में अथवा उसके अभिन्न अंग के रूप में संसद् और राज्य विधानमण्डल को निरोध की अवधि नियत करने की भी शक्ति दी गई है। कोई भी निरोध-विधि बनाने की ऐसी शक्ति का अनुमान नहीं लगा सकता जिससे निरोध की कालावधि उपबन्धित करने की शक्ति सम्बद्ध न हो। अत: संसद् और राज्य विधानमण्डल दोनों को ही उक्त प्रविष्टि के अधीन किसी विनिर्दिष्ट कालावधि के लिए किसी व्यक्ति के निरोध हेतु उपबन्ध करने की शक्ति है। अनुच्छेद 22(4)(क) का प्रयोजन उक्त शक्ति को निर्बन्धित करना है, अर्थात्, उस पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया है कि कोई विधि किसी भी व्यक्ति के निरोध को तीन मास की कालावधि से अधिक के लिए तब तक प्राधिकृत नहीं कर सकती है जब तक कि सलाहकार बोर्ड उक्त कालावधि के अन्दर यह रिपोर्ट नहीं दे देता है कि निरोध के लिए पर्याप्त कारण हैं। और परन्तुक का अर्थ यह है कि यदि सलाहकार बोर्ड ने तीन मास के अवसान से पूर्व यह रिपोर्ट दे भी दी हो कि निरोध के लिए पर्याप्त आधार हैं तो भी तीन मास के आगे निरोध की कालावधि अनुच्छेद 22(7)(ख) के अधीन संसद् द्वारा विधि द्वारा नियत अधिकतम कालावधि से अधिक न होगी। परन्तुक का अर्थ यह नहीं हो सकता कि यदि संसद् अनुच्छेद 22(7)(ख) के अधीन अधिकतम कालावधि नियत नहीं करती है तो भी राज्य विधानमण्डल ऐसी विधि पारित नहीं कर सकता जो निरोध की तीन मास से अधिक की कालावधि उपबन्धित करती हो। अत: तीन मास की कालावधि यथास्थिति, संसद् या राज्य विधानमण्डल की सर्वांगीण शक्ति के अन्तर्गत का विषय होगा क्योंकि ऐसी शक्ति सूची 3 की प्रविष्टि 3 के अन्तर्गत प्रविष्टियों के सम्बन्ध में विधि पारित करने की शक्ति की आनुषंगिक है।

11. अत: यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (4)(क) के परन्तुक को छोड़कर अधिनियम, चूंकि सलाहकार बोर्ड की राय की बाबत उपबन्ध करता है, प्रविष्टि द्वारा प्रदत्त विधायी शक्ति की सर्वांगीण प्रकृति के कारण किसी भी कालावधि के लिए किसी व्यक्ति के निरोध को प्राधिकृत कर सकता है। यह प्रश्न पूर्णत: भिन्न प्रश्न है कि ऐसी विधि को इस आधार पर अवैध घोषित किया जा सकता है कि वह अनुच्छेद 19 के अधीन मूल अधिकारों पर अयुक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करती है। तथ्यत: परन्तुक का प्रभाव यह है कि यदि संसद् अनुच्छेद 22(7)(क) के अधीन अधिकतम कालावधि विहित कर

देती है तो उस सीमा तक उस प्रविष्टि के अधीन निरोध की कालावधि नियत करने की बाबत संसद् और राज्य विधानमण्डल की शक्ति सीमित हो जाती है।

12. अत: यह देखते हुए कि सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त करने के पश्चात् किसी व्यक्ति के निरोध के लिए उपबन्ध करने वाली विधि पारित करने की शक्ति के अन्तर्गत उस प्रविष्टि द्वारा प्रदत्त विधायी शक्ति की सर्वांगीण प्रकृति के आधार पर तीन मास से अधिक की कोई युक्तियुक्त कालावधि नियत करने की शक्ति भी है, शक्ति की बाबत उदाहरण इस प्रकार दिया जा सकता है : 'क' को 'ख' से यह प्राधिकार प्राप्त है कि वह ('क') बैंक से कोई भी राशि निकाल सकता है किन्तु उससे यह कह दिया गया है कि यदि 'ग' उस प्राधिकार की सीमा नियत कर देता है तो वह इस प्रकार नियत सीमा तक ही राशि निकाल सकता है; ऐसी दशा में यदि 'ग' कोई सीमा विहित नहीं करता है तो रकम निकालने की बाबत 'क' की शक्ति सर्वांगीण होगी। अथवा यदि 'क' से कहा गया है कि वह उस सीमा से अधिक रकम नहीं निकाल सकता जो वह स्वयं नियत करे तो 'क' कितनी ही रकम निकाल सकता है, यहां तक कि वह बैंक से सम्पूर्ण राशि तक, यदि वह ऐसी सीमा निहित करता है, निकाल सकता है, ऐसी दशा में पुरोभाव्य शर्त, अर्थात्, 'क' द्वारा राशि का नियतन, पूर्णत: भ्रामक हो जाएगी क्योंकि जितनी भी रकम वह निकालना चाहेगा उतनी ही सीमा उसके प्राधिकार की हो जाएगी। दूसरे शब्दों में, चूंकि प्रविष्टि के अधीन संसद् और राज्य विधानमण्डल को ऐसी विधि पारित करने की शक्ति प्राप्त है जो सलाहकार बोर्ड की राय के लिए उपबन्ध होने की दशा में किसी व्यक्ति के तीन मास से अधिक के निरोध को प्राधिकृत करती हो तो उस दशा में सिवाय इसके कोई सीमा ही न रह जाएगी कि उसकी युक्तियुक्तता देखी जा सकती है क्योंकि निरोध की कालावधि नियत करने की शक्ति निवारक निरोध के शीर्ष के अधीन सर्वांगीण विधायी शक्ति की अनुषंगी है। परन्तुक संसद् को अनुच्छेद 22(7)(क) के अधीन निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करने की शक्ति देकर उस शक्ति को निर्बन्धित करने की शक्ति प्रदान करता है। परन्तुक स्वयं अधिकतम कालावधि विहित करने के लिए संसद् को विवश नहीं करता हैं। अत: किस उपबन्ध के अधीन संसद् अनुच्छेद 22(7) के अधीन अधिकतम कालावधि विहित करने के लिए बाध्य है? हमारे विचार से ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है जो संसद् को प्रत्यक्षत: या विवक्षित रूप से ऐसा करने के लिए बाध्य करती हो।

13. वैयक्तिक स्वतन्त्रता सबसे प्रिय स्वतन्त्रता है। वह सभी अन्य स्वतन्त्रताओं से ऊपर है और हमारी यह उत्कट आकांक्षा है कि कोई भी व्यक्ति

निरोध में पड़ा सड़ता न रहे। न्यायाधीशों और नागरिकों की तरह वैयक्तिक स्वतन्त्रता हमें उसी प्रकार प्रिय है जिस प्रकार कि वह किसी अन्य व्यक्ति को है और हम इसी प्रकार की धारणा उन न्यायाधीशों के बारे में भी कर सकते हैं जिन्होंने **गोपालन**[1], **कृष्णन्**[2] और **अशोक डे**[3] वाले मामलों में निर्णय दिया है, किन्तु यहां तो प्रश्न सम्बन्धित अनुच्छेद के निष्पक्ष निर्वचन का है और हम उस अनुच्छेद में यह बाध्यता निहित नहीं कर सकते कि संसद् निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करने के लिए बाध्य है। ऐसी बाध्यता तो वैयक्तिक स्वतन्त्रता के अस्पष्ट और काल्पनिक सिद्धान्त से व्युत्पन्न अदृश्य विकीर्णन से उद्भूत मानी जा सकती है। अनुच्छेद 22(4)(ख) की भाषा परन्तुक के साथ पठित अनुच्छेद 22(4)(क) की भाषा के पूर्णतः प्रतिकूल है। अनुच्छेद 22(4)(ख) संसद् के लिए यह बाध्यकर बनाता है कि यदि वह तीन मास के अन्दर सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त करने के लिए सम्बन्धित विधि में कोई उपबन्ध किए बिना तीन मास से अधिक की अवधि के लिए किसी व्यक्ति को निरोध में रखने के लिए विधि पारित करना चाहती है तो उसे अनुच्छेद 22(7) के उपखण्ड (क) और (ख) का अनुपालन करना होगा। अतः हमें अनुच्छेद 22(7) के अधीन संसद् की शक्ति के बारे में इस न्यायालय के पूर्वोल्लिखित निर्णयों में अपनाए गए मत से विचलन के लिए कोई कारण प्रतीत नहीं होता है।

14. यहां यह प्रश्न विचारणीय नहीं है कि जब संसद् किसी वर्ग के मामलों में निरोध की अधिकतम कालावधि नियत करने के लिए अनुच्छेद 22(7)(क) के अधीन कोई विधि बनाती है तो वह अनुच्छेद 22(7) से व्युत्पन्न निरोध की अधिकतम कालावधि नियत करने की अपनी स्वतन्त्र शक्ति का प्रयोग करती है या फिर वह उस शक्ति का प्रयोग करती है जो निवारक निरोध सम्बन्धी प्रविष्टियों से व्युत्पन्न होती है। यदि अनुच्छेद 22(7) के अधीन शक्ति का प्रयोग निवारक निरोध सम्बन्धी प्रविष्टियों द्वारा प्रदत्त शक्ति से स्वतन्त्र है तो यह प्रश्न यथावत् रूप से विचारणीय न होगा कि क्या प्रविष्टियों में से किसी के भी आधार पर पारित विधि जो अनुच्छेद 22(7)(ख) के अधीन पारित विधि द्वारा नियत अधिकतम कालावधि से अधिक लम्बी कालावधि के निरोध की व्यवस्था करती है, अनुच्छेद 22(7) के अधीन पारित विधि में विहित अधिकतम कालावधि सम्बन्धी उपबन्ध स्वतः निरस्त हो जाएगा और उस कालावधि को अनुच्छेद 22(7)(ख) के प्रयोजन के लिए "अधिकतम कालावधि" बना देगा।

---

[1] (1950) एस० सी० आर० 88.

[2] (1951) 1 एस० सी० आर० 621.

[3] (1972) 1 एस० सी० सी० 199.

1973(12) eILR(PAT) SC 114

किन्तु हमारे विचार से इतना तो निश्चित है कि अनुच्छेद 22(7) (ख) के अधीन निर्मित विधि द्वारा "अधिकतम कालावधि" की व्यवस्था का जहां तक कि संसद् का सम्बन्ध है, कोई विशिष्ट बल न होगा क्योंकि दूसरे ही दिन वह (संसद्) उच्चतर "अधिकतम कालावधि" के निरोध के लिए उपबन्ध करने वाली विधि पारित कर सकती है और उस विधि को इस आधार पर न्यायोचित ठहरा सकती है कि वह निवारक निरोध सम्बन्धी प्रविष्टि और साथ ही अनुच्छेद 22(7) (ख) के अधीन पारित विधि है। दूसरे शब्दों में, यह मत सुआधारित नहीं रह जाएगा कि अनुच्छेद 22(7) (ख) के अधीन अधिकतम कालावधि की व्यवस्था इस बात की प्रत्याभूति है कि संसद् अनुच्छेद 22(7) (ख) के अधीन नियत अधिकतम कालावधि से लम्बी कालावधि के निरोध के लिए विधि नहीं बना सकती, क्योंकि निरोध की अधिक लम्बी कालावधि नियत करने वाली विधि अनुच्छेद 22(7) (ख) के अधीन विधि को स्वतः निरस्त कर देगी। चूंकि संसद् को अनुच्छेद 22(7) (ख) के अधीन अधिकतम कालावधि नियत करने वाली विधि निरस्त करने की शक्ति प्राप्त है, अतः निरोध की पश्चात्वर्ती विधि के अधीन नियत अधिक लम्बी कालावधि ही अधिकतम कालावधि हो जाएगी।

15. बिना विचारण के निरोध एक गम्भीर विषय है। यह स्वाभाविक है कि ऐसे निरोध से निरुद्ध व्यक्ति को जेल में यातनाएं उठानी पड़ती हैं। किन्तु गम्भीर रोगों के लिए गम्भीर उपचारों की आवश्यकता होती है। इसी कारण संविधान निर्माताओं ने—जो स्वतन्त्रता—प्रेमी थे—बिना परीक्षण के निरोध की बात स्वीकार की थी।

16. यदि यह मान भी लें कि संसद् निरोध की अधिकतम कालावधि नियत करने के लिए बाध्य है तो भी, जैसा कि हमने कहा है, ऐसा नियतन अपरिवर्तनीय नहीं है। अतः यदि संसद् की इच्छानुसार ऐसा नियतन परिवर्तित किया जा सकता है तो संसद् द्वारा निरोध की अधिकतम कालावधि के नियतन से वैयक्तिक स्वतन्त्रता की क्या गारण्टी रह जाती है।

17. विद्वान् महान्यायवादी ने अनुकल्पतः यह दलील दी कि यथासंशोधित धारा 13 अनुच्छेद 22(7) (ख) के अधीन निरोध की अधिकतम कालावधि नियत करने वाली धारा समझी जाती है। उसमें इस दृष्टि से कोई कमी नहीं है कि नियत कालावधि, जैसी कि पिटीशनर ने दलील दी है, अनिश्चित है।

18. पिटीशनरों ने दलील दी है कि अनुच्छेद 22 (7) (ख) में प्रयुक्त "अधिकतम कालावधि" पद वर्षों, मासों या दिनों के रूप में कोई निश्चित कालावधि का ज्ञान कराता है और किसी भी कालावधि को तब तक अधिकतम

कालावधि नहीं कहा जा सकता जब तक कि उसका प्रारम्भ और अन्त वर्षों, मासों या दिनों में कथित नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में तर्क यह था कि चूंकि निरोध की कालावधि—अर्थात् भारत रक्षा अधिनियम, 1971 का अवसान—की समाप्ति आपात् की उद्घोषणा के वापस लिए जाने पर आश्रित है, अतः धारा 13 में विहित कालावधि अनुच्छेद 22 (7) (ख) में अनुध्यात "अधिकतम कालावधि" नहीं है।

19. "अधिकतम" (मेक्सिमम) शब्द का अर्थ है (किसी वस्तु की) उच्चतम प्राप्तव्य स्तर या मात्रा; वरिष्ठ सीमा [शार्टर ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी पृष्ठ 1221, (1953), तृतीय संस्करण]। 'कालावधि' शब्द का अर्थ है समय का अनुक्रम या विस्तार; समय या अवधि (शार्टर ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी पृष्ठ 1474)। अतः "अधिकतम कालावधि" पद का अर्थ है समय का उच्चतम या महत्तम अनुक्रम या विस्तार या प्रसार जिसकी माप वर्षों, मासों या दिनों में की जा सकती है और साथ ही किसी घटना के घटने के या परिस्थितियों के चालू बने रहने के रूप में भी की जा सकती है।

20. **जुग्गी लाल कमलापत** बनाम **कलक्टर, मुम्बई**[1] में मुम्बई उच्च न्यायालय को इस प्रश्न पर विचार करना था कि क्या अर्जन-आदेश, जिसमें यह कथन हो कि प्रश्नगत स्थावर सम्पत्ति का अर्जन युद्धकाल में और तत्पश्चात् छः मास तक कायम बना रहेगा, अस्पष्ट और अनिश्चित है। न्या० भगवती ने कहा था—

> "यद्यपि युद्ध की कालावधि अवधि की दृष्टि से अनिश्चित है तथापि वह स्वयं में निश्चित है क्योंकि पिटीशनरों को यथासंभव स्पष्ट रूप में उस अवधि की जानकारी करा दी गई है जिसके लिए उसकी सम्पत्ति प्रत्यर्थी द्वारा अर्जित की गई है, अर्थात् वर्तमान युद्ध की अवधि। यह अवधि उसी प्रकार निश्चित है जिस प्रकार कि 'क' का जीवनकाल" जो पद 'ख' के हक में शेष सम्पत्ति के व्यवस्थापन या वसीयत के लिए प्रयुक्त किया जाता है। 'ख' यह नहीं कह सकता है कि 'क' का जीवनकाल—जो ऐसी विहित कालावधि है, जो उसके ('क') के हक में शेष सम्पत्ति का कब्जा और सम्पत्ति निहित होने से पूर्व समाप्त होना है—अस्पष्ट या अनिश्चित अवधि है। यदि इस तथ्य को ध्यान में रखा जाए तो उक्त कालावधि यथासंभव स्पष्ट और निश्चित है क्योंकि

[1] ए० आई० आर० 1946 मुम्बई 280.

यद्यपि किसी व्यक्ति के जीवनकाल की अवधि अनवधार्य है, तथापि, वह जीवन अनिवार्य रूप से किसी न किसी समय समाप्त होना ही है ।"

21. हम यह आवश्यक नहीं समझते हैं कि संसद् को वर्षों, मासों या दिनों में कालावधि नियत करनी चाहिए थी जिससे कि अनुच्छेद 22 (7) (ख) के प्रयोजन के लिए वह "अधिकतम कालावधि" हो जाती। यह देखते हुए कि निवारक निरोध का उद्देश्य किसी व्यक्ति को ऐसी किसी रीति में कार्य करने से रोकना है जिसका आंतरिक सुरक्षा या लोक व्यवस्था या समुदाय के लिए आवश्यक सेवाएं और प्रदाय बनाए रखने या सप्तम अनुसूची को सूची 1 की प्रविष्टि 9 में विनिर्दिष्ट बातों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो। हमें विद्वान् महान्यायवादी की इस दलील में बड़ा बल लगता है कि अनुच्छेद 22 (7) (ख) में "अधिकतम कालावधि" आपात्काल के निर्देश में नियत की जा सकती है। दूसरे शब्दों में, चूंकि निवारक निरोध का उद्देश्य किसी व्यक्ति को ऐसी किसी रीति में कार्य करने से रोकना है जिसका आंतरिक सुरक्षा या लोक-व्यवस्था या समुदाय के लिए आवश्यक प्रदायों या सेवाएं बनाए रखने पर या सूची 1 की प्रविष्टि 9 में विनिर्दिष्ट बातों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो, अतः इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निरोध की शक्ति अवधि की दृष्टि से पर्याप्त होनी चाहिए। और अवधि की दृष्टि से कोई शक्ति पर्याप्त कैसे हो सकती है यदि वह युद्ध या लोक-अव्यवस्था या समुदाय के लिए आवश्यक प्रदाय या सेवाओं में कमी के कारण कारित आपात् का मुकाबला नहीं कर सकती है तथा यह अवधि ऐसी है जिसे वर्षों, मासों या दिनों के रूप में अतिदूरदर्शी व्यक्तियों द्वारा भी निश्चित नहीं किया जा सकता है। यदि "अधिकतम कालावधि" केवल वर्षों, मासों या दिनों में ही नियत की जा सकती है तो संसद् धारा 13 में और अधिक लम्बी कालावधि नियत कर सकती थी और उसे 'अधिकतम कालावधि' के रूप में न्यायोचित ठहरा सकती थी। यह बात तो बहुत विचित्र होगी कि आपात्काल के निर्देश में निरोध की अधिकतम कालावधि के नियतन से तो किसी को धक्का लगे और ऐसी अधिकतम कालावधि से उसे सन्तोष हो जाए जो पन्द्रह या बीस वर्ष की हो। यह प्रश्न पूर्णतः भिन्न है कि वर्षों के रूप में या घटनाओं पर आधारित "अधिकतम कालावधि" किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में युक्तियुक्त है या नहीं।

22. एक मध्यक्षेपी की ओर से **बी० शाम राव बनाम पाण्डिचेरी संघ राज्यक्षेत्र**[1] में इस न्यायालय के विनिश्चय के आधार पर यह तर्क दिया गया है कि संसद् कार्यपालिका को 'अधिकतम कालावधि' नियत करने का कार्य सौंप कर

---

[1] (1967) 2 एस० सी० आर० 650.

अपने कर्त्तव्य से च्युत हुई है क्योंकि आपात् की उद्घोषणा की अवधि की समाप्ति राष्ट्रपति के स्वविवेक पर आधृत होती है।

23. हमारे विचार से आपात्काल की समाप्ति जैसी घटना के निर्देश में निरोध की अधिकतम कालावधि नियत करके संसद् ने न तो किसी भी रूप में अधिकतम कालावधि नियत करने के अपने कृत्य या शक्ति का अधित्यजन किया है और न ही उसने अपनी उक्त शक्ति राष्ट्रपति को प्रत्यायोजित की है। निःसंदेह संसद् ने ही धारा 13 में अधिकतम कालावधि नियत की है। प्रश्न केवल यह है कि क्या कालावधि की अवधि राष्ट्रपति की इच्छा पर आधारित होने के कारण "अधिकतम कालावधि" नहीं रह गई है। हम यह उपधारणा नहीं कर सकते कि राष्ट्रपति अयुक्तियुक्त रूप से आपात् की उद्घोषणा आपात् की समाप्ति के पश्चात् भी चालू रखेंगे।

24. पिटीशनरों ने तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 13 इस दृष्टि से अवैध है कि वह संविधान के अनुच्छेद 19 के अधीन उनके मूल अधिकारों का अतिक्रमण करती हैं। वे ऐसा आक्षेप नहीं कर सकते हैं क्योंकि आपात् उद्घोषणा ऐसी आपत्ति को वर्जित करती है। यद्यपि यह तर्क दिया गया है कि अधिनियम की धारा 13 संविधान के अनुच्छेद 14 का इस कारण अतिक्रमण करती है कि उसके द्वारा निरोधकर्ता अधिकारी को निरोध की कालावधि नियत करने का असीमित स्वविवेक प्रदान किया गया है, तथापि हम यह नहीं समझते कि इस दलील में कोई सार है। आरंभिक निरोध आदेश करने वाले प्राधिकारी से यह आशा नहीं की गई है कि वह निरोध की कालावधि नियत करे (देखिए—**कृष्णन् वाला मामला**[1]) और यदि वह ऐसा करता है तो वह अवैध होगा। साथ ही अधिनियम की धारा 12 (1) के अधीन निरोध आदेश पुष्ट करते समय सरकार भी निरोध की कालावधि नियत करने के लिए बाध्य नहीं है। (देखिए—**सना उल्लाह बनाम जम्मू कश्मीर राज्य**[2])। यदि धारा 12 (1) के अधीन निरोध आदेश की पुष्टि में कालावधि नियत कर भी दी जाती है, तो भी वह कालावधि समाप्त की जा सकती है या बदली जा सकती है (देखिए—धारा 13)। धारा 13 द्वारा निरोध की अधिकतम कालावधि नियत की गई है और सरकार को सभी सुसंगत परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् अधिकतम कालावधि के अन्दर अवधि नियत करने का स्वविवेक प्रदान किया गया है। यह देखते हुए कि धारा 13 द्वारा निरोध की अधिकतम कालावधि नियत कर दी

---

1 (1951) एस० सी० आर० 621.

2 ए० आई० आर० 1972 एस० सी० 2431.

गई है और यह कि अनेक सुसंगत परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् ही सम्पृक्त मामले में निरोध की कालावधि नियत करने की शक्ति प्रयोग में लाई जा सकती है, हम यह नहीं समझते कि इस तर्क में कोई सार है कि निरोध की कालावधि तय करने की बाबत सरकार की शक्ति विभेदकारी या मनमानी है।

25. परिणामस्वरूप हम पिटीशनरों की दलीलें अस्वीकार करते हैं और पिटीशनों को निपटारे के लिए सूचीगत करते हैं।

न्यायाधिपति अलगिरिस्वामी—

26. मैंने अपने विद्वान् बन्धु न्या० मैथ्यू का निर्णय पढ़ा है और सम्मानपूर्वक मैं उससे इस प्रश्न पर सहमत नही हूं कि क्या संसद् निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करने के लिए आबद्ध है। मैं सुसंगत उपबंध बाद में विश्लेषित करूंगा किन्तु मैं पहले उन तीन विनिश्चयों की चर्चा करूंगा जो इस प्रश्न से सम्बन्धित हैं।

27. **ए० के० गोपालन** बनाम **मद्रास राज्य**[1] में न्यायपीठ के सभी छः विद्वान् न्यायाधिपतियों ने अपना निर्णय अलग-अलग दिया था। मु० न्या० कानिया ही एक ऐसे न्यायाधिपति थे जिन्होंने उक्त प्रश्न की बाबत निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

> "तर्क यह दिया गया है कि इससे संसद् को किसी व्यक्ति को अनिश्चित काल तक निरुद्ध रखने की शक्ति दी गई है। यह अर्थान्वियन सही है तो वह उपखण्ड (7) की शब्दावली से ही प्रकट होता है और न्यायालय इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कर सकते।

यह ध्यान देने की बात है कि इस बारे में वहां कोई चर्चा नहीं की गई हैं कि क्या विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि तर्क सही है या गलत अथवा यह उपखण्ड (7) की शब्दावली से किस प्रकार प्रकट होता है कि संसद् अधिकतम कालावधि विहित करने के लिए बाध्य नहीं है।

28. अगले मामले में (**एस० कृष्णन्** बनाम **मद्रास राज्य**[2]) न्या० पातञ्जलि ने जिनसे मु० न्या० कानिया सहमत थे, उक्त प्रश्न पर कोई चर्चा नहीं की थी। न्या० महाजन ने, जिनके आधारों से न्या० एस० आर० दास सारतः सहमत थे, उक्त प्रश्न पर निम्नलिखित रूप में अभिव्यक्ति की थी—

> "हमारे समक्ष कही गई दूसरी बात यह थी कि संविधान में किसी अनिश्चित कालावधि का निरोध अनुध्यात नहीं है और यह कि संसद्

---

1 (1950) एस० सी० आर० 88.

2 (1951) एस० सी० आर० 621.

निवारक निरोध सम्बन्धी विधि के अधीन किसी व्यक्ति के निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करने के लिए बाध्य है। मेरे विचार से यह तर्क भी सुआधारित नहीं है। बल अनुच्छेद 22 (4) (क) के परन्तुक पर दिया गया है जिसमें यह अधिनियमित है कि इस उपखण्ड की कोई भी बात उपखण्ड (7) (क) के अधीन संसद् द्वारा निर्मित विधि द्वारा विहित अधिकतम कालावधि से अधिक के लिए किसी व्यक्ति के निरोध को प्राधिकृत नहीं करती है, और यह तर्क दिया गया था कि अनुच्छेद 22(7) में प्रयुक्त शब्द "कर सकती है" (मे) का अर्थ "करेगी" (मस्ट) लगाया जाना चाहिए और उसका अर्थ वैवश्यक रूप में समझा जाना चाहिए क्योंकि अधिनियमिति न्यायपूर्ति और लोकहित के लिए अथवा निवारक रूप में निरुद्ध व्यक्तियों की बाबत संसद् को विधि द्वारा निरोध की अधिकतम कालावधि उपबंधित करने के लिए प्राधिकृत करती है। मैक्सवेल की कृति "इण्टरप्रेटेशन ऑफ दि स्टेट्यूट्स" (नवां संस्करण, पृष्ठ 246) प्रति निर्देश किया गया है साथ ही जूलियस बनाम विशप ऑफ ऑक्सफोर्ड 5 अपील केसेज़ 214 का भी हवाला दिया गया है। उस मामले में लॉर्ड केज़ ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था—

"यदि व्यक्तियों के लाभ के लिए प्रयोग में आने वाली शक्ति निरंकुश है और किसी लोक अधिकारी को दी गई है तो उसका प्रयोग किया ही जाना चाहिए।"

मेरे विचार से अनुच्छेद 22 का खण्ड (7), जैसा कि पहले भी बताया गया है, अपने सही अर्थों में खण्ड (4) (क) में निहित मूल अधिकार के विस्तार को किसी सीमा तक निर्बन्धित करता है और इस संदर्भ में मैक्सवेल द्वारा निर्दिष्ट नियम किसी भी प्रकार लागू नहीं होता है। साथ ही सांविधान उपबंध, मात्र सामर्थ्य प्रदान करता है और यह सुस्थिर नियम है कि सामर्थ्य प्रदान करने वाले अधिनियम के अनुज्ञात्मक प्रकृति के शब्दों को वैवश्यक प्रकृति का अर्थ नहीं दिया जा सकता। (देखिए— क्रेज़ ऑन स्टैट्यूट लॉ, पृष्ठ 254). चाहे जो भी हो, वह प्रश्न अब विचाराधीन नहीं रह गया है क्योंकि **गोपालन वाले मामले**[1] में वह बहुमत निर्णय द्वारा विनिश्चित हो चुका है। रिपोर्ट के पृष्ठ 119 पर विद्वान् मु० न्या० ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है—

"उपखण्ड (ख) आज्ञात्मक है। संसद् के लिए कोई भी अधिकतम कालावधि विहित करना अनिवार्य नहीं है। तर्क यह दिया गया है कि

[1] (1950) एस० सी० आर० 88.

इससे तो संसद् को यह अधिकार मिल जाता है कि वह किसी भी व्यक्ति को अनिश्चितकाल के लिए निरुद्ध कर सकती है। यदि ऐसा अर्थान्वयन सही है तो यह अर्थान्वयन स्वयं उपखण्ड (7) की शब्दावली से प्रकट होता है और न्यायालय इस बारे में कुछ नहीं कर सकते।

श्री नम्बियार ने जो कुछ भी कहा है वह हमें गोपालन वाले मामले में (1950) एस० सी० आर० 88, व्यक्त मत से भिन्न मत व्यक्त करने के लिए विवश नहीं कर सकता है। यहां यह बता दिया जाए कि संसद् ने पहले ही भली प्रकार से सोच लिया होगा कि अस्थायी प्रकृति की और एक वर्ष की कालावधि वाली अधिनियमिति में निरोध की कोई अधिकतम कालावधि नियत करना अनावश्यक है। अपनी अवधि की समाप्ति पर ऐसी अधिनियमितियां अप्रभावी हो जाती हैं। वे उस कालावधि के पश्चात् जिसके लिए वे अधिनियमिति की जाती हैं स्वतः समाप्त हो जाती हैं और तत्पश्चात् उनके अधीन कुछ भी नहीं किया जा सकता है। अतः पिटीशनरों का निरोध समाप्त होना ही था और वह समाप्ति अधिनियमिति की समाप्ति के साथ होनी थी और ऐसी परिस्थितियों में संसद् ने भली प्रकार सोच लिया होगा कि इस विधि के अधीन निरुद्ध व्यक्तियों के लिए निरोध को अधिकतम कालावधि विहित करना पूर्णतः अनावश्यक है।"

यह ध्यान देने की बात है कि इस प्रश्न की चर्चा करते समय उसने यह विचार किया होगा कि प्रश्न गोपालन वाले मामले से विनिश्चित हो चुका है। मैं यह पहले भी बता चुका हूं कि वह बहुमत निर्णय नहीं था। वह तो मु० न्या० कानिया की प्रासंगिक टिप्पणी थी। दोनों ही मामले मुख्यतः इस बात पर आधारित हैं कि चूंकि अधिनियम स्वयं एक अस्थायी अधिनियमिति है जिसे केवल एक वर्ष तक प्रवृत्त रहना है, अतः अधिकतम कालावधि का प्रश्न गंभीर रूप से विचार के लिए उत्पन्न नहीं हुआ था। किन्तु न्यायाधिपति बोस का मत था कि निरोध की अधिकतम कालावधि नियत करना संसद् के लिए अनिवार्य है।

29. **पश्चिमी बंगाल राज्य** बनाम **अशोक डे और अन्य**[1] के हाल ही के मामले में (जिसमें चार विद्वान् न्यायाधिपतियों ने मिलकर निर्णय दिया है) न्यायालय की ओर से निर्णय सुनाते हुए न्या० दुआ ने कहा है—

"प्रत्यर्थियों की ओर से श्री एस० एन० चैटर्जी द्वारा हमारे समक्ष दोहराया गया तथा उच्च न्यायायय में उठाया गया और उच्च न्यायालय

[1] (1972) 1 ए० सी० सी० 199.

द्वारा स्वीकृत तर्क यह है कि अनुच्छेद 22 का खण्ड (7) (ख) संसद् के लिए यह आबद्धकर करता है कि वह उस अधिकतम कालावधि को विहित करे जिसके लिए किसी व्यक्ति को निरुद्ध किया जा सकता है और वह उक्त अनुच्छेद के खण्ड (4) (क) के अधीन जांच के लिए सलाहकार बोर्ड द्वारा अनुसरणीय प्रक्रिया भी विहित करे। निवेदन के अनुसार ऐसी संसदीय विधि के अभाव में कोई भी निरोध-आदेश तीन मास से अधिक की कालावधि के निरोध को प्राधिकृत नहीं कर सकता और तीन मास की कालावधि की समाप्ति पर अधिनियम के अधीन निरुद्ध व्यक्तियों को मुक्त करना होगा।"

"हम अनुच्छेद 22 के खण्ड (7) का उक्त अर्थान्वियन स्वीकार नहीं कर सकते। यह ध्यान देने की बात है कि प्रत्यर्थी के विद्वान् काउन्सेल श्री चैटर्जी ने हमारे समक्ष अभिव्यक्त रूप से यह स्वीकार किया है कि अनुच्छेद 22 (7)एक सामर्थ्य प्रदान करने वाला या अनुज्ञात्मक उपबंध है और वह संसद् पर ऐसी विधि बनाने की बाध्यता अधिरोपित नहीं करता है जिसके द्वारा वह ऐसी परिस्थितियां विहित करे जिनके अधीन किसी व्यक्ति को तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सके। किन्तु उनके अनुसार खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) और (ग) में ऐसा कोई आज्ञापक उपबंध नहीं है जो संसद् के लिए बाध्यकारी हो। हमारे विचार से यदि इस अनुच्छेद के खण्ड (7) का साधारण रूप से अध्ययन किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वह संसद् को ऐसी विधि बनाने के लिए प्राधिकृत या सामर्थ्य प्रदान करता है जिसके द्वारा निम्नलिखित विहित किया गया हो : (i) वे परिस्थितियां जिनमें किसी व्यक्ति को तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है ; (ii) निवारक निरोध की बाबत उपबंध करने वाले किसी विधि के अधीन किसी व्यक्ति को मामलों के किसी प्रकार या प्रकारों में अधिकतम कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है; (iii) और इस अनुच्छेद के खण्ड (4) के अधीन जांच में उस सलाहकार बोर्ड द्वारा अनुसरणीय प्रक्रिया। प्रत्यर्थियों की यह दलील कि इस अनुच्छेद के प्रारंभ में प्रयुक्त पद "सकती है" (मे) शब्द को "करेगी" (शैल) के रूप में पढ़ा जाना चाहिए, जो खण्ड (ख) और (ग) के बारे में है, यद्यपि जहां तक कि खण्ड (क) का सम्बन्ध है उसके सामान्य अनुज्ञेय प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं करता है, तथापि, किन्हीं विशिष्ट आबद्धकर कारणों के अभाव में उसे न तो सैद्धांतिक दृष्टि से और न किसी पूर्व निर्णय के

आधार पर ही समर्थन दिया जा सकता है। दूसरी ओर इस न्यायालय ने एस० कृष्णन् बनाम मध्यप्रदेश राज्य (1951) एस० सी० आर० 621 में गोपालन बनाम मद्रास राज्य : (1950) एस० सी० आर० 88 में मुख्य न्यायाधिपति कानिया के मत से सहमति प्रकट करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि खण्ड (7) का उपखण्ड (ख) अनुज्ञापक है। यह मत न केवल हमारे लिए आबद्धकर ही है वरन् हम सादर उस मत से सहमत भी हैं।"

उक्त विनिश्चय प्रत्क्षतः हमारे समक्ष विचारणीय प्रश्न से तो सम्बन्धित है किन्तु सुसंगत उपबंधों के सविस्तार ब्योरों से सम्बन्धित नहीं है, जैसा कि न्या० भगवती और न्या० मैथ्यू ने किया है और जैसा मैंने भी बाद में करना चाहा है। वस्तुतः उक्त विनिश्चय निवारक निरोध सम्बन्धी विधि बनाने के बारे में राज्य विधानमण्डल की शक्ति से सम्बन्धित था और न्यायाधिपतियों का दृष्टिकोण पूर्णतः उसी विचार से प्रभावित था और उनका इस प्रश्न की ओर कोई ध्यान नहीं था कि अधिकतम कालावधि का विहित किया जाना आबद्धकर है या नहीं।

30. निवारक निरोध के बारे में विधान करने की संसद् की शक्ति सप्तम अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 9 में उल्लिखित है और साथ ही वह शक्ति सप्तम अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 3 में भी उल्लिखित है। राज्य विधानमण्डल को निवारक निरोध सम्बन्धी विधि बनाने की शक्ति सप्तम अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 3 के अधीन दी गई है। किन्तु यह शक्ति संविधान के अनुच्छेद 254 (2) के उपबंधों के अध्यधीन है। अनुच्छेद 22 संविधान के भाग 3 में जो मूल अधिकारों के बारे में है, विद्यमान है। अनुच्छेद 13 (2) के अनुसार राज्य ऐसी कोई विधि नही बनाएगा जो उक्त भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीनती हो या कम करती हो। अतः अनुच्छेद 22 ऐसा अनुच्छेद है जो निवारक निरोध की बाबत संसद् और राज्य विधानमण्डलों की शक्ति को उसमें अधिकथित रूप में निर्बन्धित करता है। निस्संदेह **गोपालन वाले मामले**[1] में विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति कानिया और न्यायाधिपति पातंजलि शास्त्री और दास ने यह मत व्यक्त किया था कि अनुच्छेद 22 निवारक निरोध सम्बन्धी सांविधानिक रक्षोपायों की बाबत स्वयं में पूर्ण संहिता नही है। यद्यपि न्यायाधिपति महाजन का यह विचार था कि उसमें निवारक निरोध सम्बन्धी सांविधानिक रक्षोपायों की बाबत स्वयं में एक पूर्ण संहिता अन्तर्विष्ट है। न्यायाधिपति दास का यह मत था कि अनुच्छेद 22 में प्रक्रिया सम्बन्धी न्यूनतम

[1] 1950 एस० सी० आर० 88.

नियम अधिकथित हैं जिनकी अवहेलना अथवा उपेक्षा संसद् भी नहीं कर सकती है। न्यायाधिपति मुकर्जी ने अपने निष्कर्षों का उल्लेख इस धारणा पर आधारित किया था कि अनुच्छेद 22 निवारक निरोध की बाबत स्वयं में एक पूर्ण संहिता नहीं है। न्यायाधिपति फज़ल अली का यह मत था कि अनुच्छेद 22 निवारक निरोध के बारे में स्वयं में निःशेषित (इक्ज़्हास्टिव) संहिता नहीं है। इन सब से यह दर्शित होता है कि सभी न्यायाधिपतियों ने लगभग यही मत अपनाया है कि अनुच्छेद 22 में निवारक निरोध सम्बन्धी कतिपय सांविधानिक रक्षोपायों के बारे में उल्लेख किया गया है।

31. अब हम अपने वर्तमान प्रयोजन के लिए यथा आवश्यक अनुच्छेद 22 का अवलोकन करेंगे—

> "अनुच्छेद 22 (4). निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली कोई विधि किसी व्यक्ति का तीन महीने से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध किया जाना प्राधिकृत तब तक न करेगी जब तक कि—
>
> (क) ऐसे व्यक्तियों से, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं, रह चुके हैं अथवा नियुक्त होने की अर्हता रखते हैं, मिल कर बनी मंत्रणा-मंडली ने तीन महीने की उक्त कालावधि की समाप्ति के पूर्व प्रतिवेदित नहीं किया है कि ऐसे निरोध के लिए उसकी राय में पर्याप्त कारण हैं।
>
> (ख) ऐसा व्यक्ति खंड (7) के उपखंड (क) और (ख) के अधीन संसद्-निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अनुसार निरुद्ध नहीं है।
>
> (7) संसद् विधि द्वारा विहित कर सकेगी कि—
>
> (क) किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में किसी व्यक्ति को निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन तीन महीने से अधिक कालावधि के लिए खंड (4) के उपखण्ड (क) के उपबन्धों के अनुसार मंत्रणा-मंडली की राय प्राप्त किए बिना निरुद्ध किया जा सकेगा;
>
> (ख) किस प्रकार या प्रकारों से मामलों में कितनी अधिकतम कालावधि के लिए कोई व्यक्ति निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन निरुद्ध किया जा सकेगा ; तथा
>
> (ग) .... ।"

1973(12) eILR(PAT) SC 114

32. विषय को स्पष्ट करने के लिए हम उपरोक्त उपबन्धों के विभिन्न भागों को अलग-अलग प्रस्तुत करेंगे—

1. निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली कोई विधि किसी व्यक्ति का तीन महीने से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध किया जाना प्राधिकृत तब तक न करेगी जब तक कि ऐसे व्यक्तियों से जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं, रह चुके हैं अथवा नियुक्त होने की अर्हता रखते हैं, मिल कर बनी मंत्रणा-मंडली ने तीन महीने की उक्त कालावधि की समाप्ति के पूर्व प्रतिवेदित नहीं किया है कि ऐसे निरोध के लिए उस की राय में पर्याप्त कारण हैं।

2. किन्तु यह किसी व्यक्ति के, उस अधिकतम कालावधि से आगे, निरोध को प्राधिकृत न करेगी जो खंड (7) के उपखंड (ख) के अधीन संसद्-निर्मित किसी विधि द्वारा विहित की गई हो।

3. निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली कोई विधि किसी व्यक्ति का तीन महीने से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध किया जाना प्राधिकृत तब तक न करेगी जब तक कि ऐसे व्यक्ति को संसद् द्वारा निर्मित किसी ऐसी विधि के उपबन्धों के अनुसार निरुद्ध नहीं किया जाता है जो निम्नलिखित उपबन्ध करती हो—

(क) किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में किसी व्यक्ति को निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन तीन महीने से अधिक कालावधि के लिए खंड (4) के उपखंड (क) के उपबन्धों के अनुसार मंत्रणा-मंडली की राय प्राप्त किए बिना निरुद्ध किया जा सकेगा; और

(ख) किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में कितनी अधिकतम कालावधि के लिए कोई व्यक्ति निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली विधि के अधीन निरुद्ध किया जा सकेगा।

33. प्रथम प्रस्थापना का यह अर्थ है कि निवारक निरोध की बाबत उपबन्ध करने वाली विधि तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए किसी व्यक्ति के निरुद्ध किए जाने को केवल तभी प्राधिकृत कर सकती है जब कि सलाहकार बोर्ड ने यह रिपोर्ट दे दी हो कि ऐसे निरोध के लिए पर्याप्त कारण हैं।

34. द्वितीय प्रस्थापना का अर्थ है कि सलाहकार बोर्ड की सलाह पर भी निरोध खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन संसद् द्वारा निर्मित विधि द्वारा विहित अधिकतम कालावधि से अधिक नहीं हो सकता है। मैं इस प्रश्न पर आगे विचार करूंगा कि संसद ऐसी कोई विधि बनाने के लिए आबद्ध है या नहीं।

35. तृतीय प्रस्थापना से यह अभिप्रेत है कि यदि किसी व्यक्ति को खण्ड (7) के उपखण्ड (क) और (ख) के अधीन संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अनुसार निरुद्ध किया जाता है तो निरोध तीन मास की कालावधि से अधिक के लिए भी किया जा सकता है। यह ध्यान देने की बात है कि इस प्रस्थापना के अधीन अनुध्यात विधि वह होती है जो खण्ड (7) के उपखण्ड (क) और (ख) के अधीन बनाई जाती है। अतः संसदीय विधान सलाहकार बोर्ड की राय अभिप्राप्त किए बिना निवारक निरोध के लिए उन परिस्थितियों को और मामलों के प्रकार या प्रकारों को जिनमें कि निरोध किया जा सकता है, अधिकथित करके उपबन्ध किया जा सकता है। उस दशा में किसी व्यक्ति को निरुद्ध करने के लिए अधिकतम कालावधि संसदीय विधि द्वारा विनिर्दिष्ट कर दी जानी चाहिए अर्थात्, किसी भी व्यक्ति को सलाहकार बोर्ड की राय अभिप्राप्त किए बिना तीन मास की कालावधि से अधिक के लिए तब तक निरुद्ध नहीं किया जा सकता है जब तक कि सम्बन्धित विधि में वह अधिकतम कालावधि उपबन्धित न हो जिसके लिए ऐसे व्यक्ति को निरुद्ध किया जा सकता हो। संविधान निर्माताओं के अनुध्यान में यदि था कि वह सलाहकार बोर्ड की राय से मुक्ति पाना है तो निरोध की अधिकतम कालावधि अधिकथित कर दी जानी चाहिए। अतः यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 22 (7) में प्रयुक्त 'सकती है' (मे) शब्द "करेगी" (शैल) के रूप में प्रयुक्त हुआ है। यह भी स्पष्ट है कि सलाहकार बोर्ड की राय से मुक्ति पाने की शक्ति केवल संसद को दी गई है। जब वह अनुच्छेद 22 के खण्ड (7) के उपखण्ड (क) और (ख) के अधीन विधि बनाती है तो वह विधि राज्य विधानमण्डलों को भी, जब कि वे निवारक निरोध सम्बन्धी विधि अधिनियमित करते हैं, लागू होती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि राज्य विधानमण्डलों को निवारक निरोध सम्बन्धी विधि बनाने की शक्ति नहीं है। किन्तु उन्हें ऐसी परिस्थितियां जिनके अधीन और मामलों के ऐसे प्रकार या प्रकारों जिनमें किसी व्यक्ति को सलाहकार बोर्ड की राय अभिप्राप्त किए बिना तीन मास से अधिक की कालावधि तक निरुद्ध रखा जा सकता है, विहित करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। वह शक्ति तो अनन्यतः संसद् में निहित है और प्रत्येक राज्य विधानमण्डल

अनुच्छेद 22 (7) (क) और (ख) के अधीन निर्मित संसदीय विधान द्वारा अधिकतम कालावधि के अधीन होगा।

36. अब केवल एक ही प्रश्न विचारार्थ शेष रहता है, अर्थात्, क्या अनुच्छेद 22 (4) के अधीन निवारक निरोध सम्बन्धी विधि में निरोध की अधिकतम कालावधि की बाबत उपबन्ध होना अनिवार्य है जब कि उसमें सलाहकार बोर्ड की बाबत उपबन्ध कर दिया गया हो। इस प्रश्न पर विचार करते हुए, एक बात स्पष्ट है कि यदि संसद् उक्त द्वितीय प्रस्थापना के अर्थात्, अनुच्छेद 22(4)(क) परन्तुक के, अधीन अधिकतम कालावधि विहित कर देती है तो वह निवारक निरोध सम्बन्धी सभी विधियों को लागू होगी चाहे ऐसी विधि संसद् द्वारा बनाई गई हो या राज्य विधानमण्डल द्वारा। यह स्पष्ट है कि अधिकतम कालावधि विहित करने की बाबत शक्ति संसद् को ही, जिसके प्रति परन्तुक में निर्देश किया गया है, दी गई है और इसका उद्देश्य राज्य विधानमण्डलों को निरोध की अधिकतम सीमा विहित किए बिना निवारक निरोध सम्बन्धी विधि बनाने से रोकना है। यह निवारक निरोध सम्बन्धी विधि बनाने की बाबत राज्य के विधानमण्डल की शक्तियों पर एक दूसरा निर्बन्धन है। यह स्पष्ट है कि संविधान निर्माता यह नहीं चाहते थे कि राज्य विधानमण्डलों को सप्तम अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 3 के अधीन उन्हें आबंटित विषयों की बाबत भी निवारक निरोध सम्बन्धी विधि बनाने की अनियंत्रित शक्ति प्रदान की जाए। इस उपबन्ध की तुलना अनुच्छेद 31 (3) के उपबन्ध से की जा सकती है। अनुच्छेद 31 (3), अनुच्छेद 31 के खण्ड (2) के उपबन्धों के अधीन विधान करने की बाबत उपबन्ध करता है जिसके अधीन वाला विधान राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित किया जाता है और उसकी ऐसी अनुमति प्राप्त हो जाने पर ही वह प्रभावी हो सकता है। यह राज्य विधानमण्डल की अनुच्छेद 31(2)के उपबन्धों के अधीन विधान करने की शक्ति पर एक निबर्न्धन के रूप में है। अनुच्छेद 31 (3) और अनुच्छेद 22 (4) (क) के परन्तुक के बीच अन्तर केवल यह है कि अनुच्छेद 31 (3) के अधीन शक्ति राष्ट्रपति को दी गई है और अनुच्छेद 22 (4) (क) के अधीन शक्ति संसद् को। अतः यदि खण्ड (7) के उपखण्ड (क) और (ख) (दोनों को एक साथ पढ़ा जाए) के अधीन संसद् को निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करनी है तो क्या इस तथ्य से कि अनुच्छेद 22(4)(क)के परन्तुक में केवल खण्ड(7)के उपखण्ड (ख) का ही उल्लेख किया गया है और उसमें उपखण्ड (क) का भी उल्लेख नहीं किया गया है, कोई अन्तर पड़ता है। जैसा कि ऊपर पहले भी बताया जा चुका है, यदि इस परन्तुक में यह अनुध्यात है कि संसद् ही निरोध की ऐसी

अधिकतम कालावधि विहित करेगी, जिसका अतिक्रमण निवारक निरोध सम्बन्धी राज्य-विधि भी नहीं कर सकेगी, तो युक्तियुक्त अर्थान्वयन यह अभिनिर्धारित करने में होगा कि उपखण्ड (ख) के अधीन विधान करने के लिए संसद् आबद्ध है जिससे कि निरोध की अधिकतम कालावधि की बाबत राज्य विधानमण्डल की शक्ति सीमित हो जाए। यह सच है कि संसद् निरोध की अधिकतम कालावधि की बाबत विधान करने के बारे में अपनी शक्ति को सीमित नहीं कर सकती है। यदि संसद् कोई अधिकतम कालावधि विहित कर भी देती है तो वह उसे परिवर्तित भी कर सकती है किन्तु यदि ऐसी अधिकतम कालावधि अयुक्तियुक्त रूप से लम्बी है तो उससे अनुच्छेद 19 (1) का अतिक्रमण होगा। सम्पूर्ण अनुच्छेद 22 (4) और 22 (7) का सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन करने से यह आवश्यक हो जाएगा कि संसद् को न केवल राज्य द्वारा निर्मित निवारक निरोध सम्बन्धी विधियों के सम्बन्ध में ही वरन् निवारक निरोध सम्बन्धी अपनी ही विधियों के सम्बन्ध में भी निरोध की अधिकतम कालावधि उपबन्धित करनी चाहिए। यदि अधिकतम कालावधि की बाबत उपबन्ध करने के लिए विधान करना केवल ऐच्छिक है तो परन्तुक की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। इस तथ्य से कि अनुच्छेद 22 (4)(क) के परन्तुक में केवल खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) का ही उल्लेख किया गया है, निवारक निरोध के लिए अधिकतम कालावधि विहित किए जाने की बाध्यकारी प्रकृति में कोई अन्तर नहीं होता है, जैसा कि हम पहले भी देख चुके हैं, अनुच्छेद 22 (7) (क) और (ख) के अधीन निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करना अनिवार्य है। यह भी कहा जा सकता है कि यदि संसद् ने खण्ड (7) के उपखण्ड (क) और उपखण्ड (ख) के अधीन निरोध की अधिकतम कालावधि विहित कर दी है तो ऐसी अधिकतम कालावधि स्वतः अनुच्छेद 22 (4) (क) के अधीन परन्तुक को लागू कर देगी। साथ ही खण्ड (7) के उपखंड (क) का उल्लेख उपखण्ड (4)(क) के परन्तुक में नहीं है क्योंकि अनुच्छेद 22 (4) सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त किए बिना निरोध के बारे में नहीं है। यही कारण है कि उपखण्ड (ख) का ही उल्लेख किया गया है। यह स्पष्ट है कि निरोध की अधिकतम कालावधि का विचार सम्पूर्ण अनुच्छेद 22(4) और (7) में अन्तर्निहित है। ऐसा इसलिए है कि जब संसद् और राज्य विधानमण्डल कोई विधि बनाते हैं तो कार्यपालिका ही निरोध आदेश करती है और यदि विधि द्वारा निरोध की कोई अधिकतम कालावधि विहित नहीं हो जाती है तो कार्यपालिका व्यक्तियों को अनिश्चितकाल तक निरोध में रख सकती है। यह अभिनिर्धारित करना भी युक्तियुक्त नहीं होगा कि संविधान निर्माता यह चाहते थे कि यदि किसी व्यक्ति को सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त किए

बिना निरुद्ध किया जाता है तो निरोध की अधिकतम कालावधि विहित होनी चाहिए किन्तु यदि बोर्ड की राय प्राप्त कर ली जाती है तो ऐसी अधिकतम कालावधि विहित किया जाना आवश्यक नहीं है। यह ध्यान देने की बात है कि सलाहकार बोर्ड की राय केवल सम्बन्धित निरोध के हेतुक की पर्याप्तता के बारे में होती है और वह उस कालावधि की बाबत नहीं होती है जिसके लिए किसी व्यक्ति को निरुद्ध किया जा सकता है। अतः यदि समग्र सामग्री को ध्यान में रखा जाए और अनुच्छेद 22 के खण्ड (4) और (7) के उपबन्धों का विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि निरोध की अधिकतम कालावधि संसद् को अधिकथित कर देनी चाहिए। चाहे मामला सलाहकार बोर्ड की राय अभिप्राप्त करने के पश्चात् निरोध से सम्बन्धित हो या चाहे सलाहकार बोर्ड की राय अभिप्राप्त किए बिना निरोध से सम्बन्धित हो, मेरा मत संविधान सभा की डिबेटों से समर्थित है। इन डिबेटों के प्रति न्यायाधिपति भगवती ने निर्देश किया है।

37. किन्तु मैं न्यायाधिपति मैथ्यू के इस मत से सहमत हूं कि विचाराधीन विधि द्वारा अधिकतम कालावधि विहित कर दी गई है और इसलिए पिटीशनरों की दलील स्वीकार कर ली जानी चाहिए और रिट पिटीशनों को निपटारे के लिए सूचीगत कर दिया जाना चाहिए।

न्यायाधिपति भगवती—

38. प्रस्तुत पिटीशन में जो प्रश्न उत्पन्न हुआ है वह सर्वोच्च महत्व का है। वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रभावित करता है जो स्वतंत्रता हम सब को अत्यन्त प्रिय है। प्रश्न यह है कि हम इस स्वतंत्रता को किस सीमा तक न्यायिक अर्थान्वयन से निर्बन्धित होने देंगे। क्या हम निर्वचन द्वारा विधानमण्डल को ऐसी असीमित शक्ति प्राप्त करने देंगे कि वह व्यक्ति को बिना विचारण के इतनी कालावधि के लिए, जितनी वह चाहे, निरुद्ध करे अथवा हम उक्त शक्ति के प्रयोग पर सांविधानिक निर्बन्धन अधिरोपित किया गया मानेंगे। यही मुख्य प्रश्न हमारे समक्ष उत्पन्न हुआ है।

39. **ए० के० गोपालन** बनाम **मद्रास राज्य**[1] में इस न्यायालय के विनिश्चय द्वारा इस बाबत यह नियम भली प्रकार स्थापित हो चुका है कि निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली विधि को अधिनियमित करने की विधायी शक्ति सप्तम अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 9 और सूची 3 की प्रविष्टि 3 से उत्पन्न

---

[1] (1950) एस० सी० आर० 88.

हुई है। संसद् की निवारक निरोध सम्बन्धी विधि बनाने की शक्ति सूची 1 की प्रविष्टि 9 में प्रगणित विषयों तक सीमित है। जब कि संसद् और विधानमण्डल दोनों को ही निवारक निरोध सम्बन्धी विधि बनाने की भी शक्ति दी गई है। इस शक्ति का प्रयोग सूची 3 की प्रविष्टि 3 में विनिर्दिष्ट विषयों तक सीमित है। निवारक निरोध सम्बन्धी विधि बनाने की बाबत संसद् और राज्य विधानमण्डलों की विधायी शक्ति सर्वांगीण है और वह केवल सांविधानिक निर्बन्धनों के ही अध्यधीन हैं। इस विधायी शक्ति में अनिवार्यतः प्रशासनिक या आनुषंगिक शक्ति के रूप में ऐसी विधि के अधीन किसी व्यक्ति को किस कालावधि के लिए निरोध किया जा सकता है, वह कालावधि विहित करने की शक्ति भी सम्मिलित है। यदि इस शक्ति के प्रयोग पर कोई निर्बन्धन नहीं होगा तो संसद् या राज्य विधानमण्डल और विशिष्टतः राज्य विधानमण्डल अपनी इच्छा अनुसार निरोध की कोई भी सीमा निश्चित कर हैं और बिना परीक्षण के किसी भी व्यक्ति को अनिश्चित काल के लिए निरुद्ध रख सकते हैं। ऐसी शक्ति अत्यंत विस्तृत और भयावह होगी जो वैयक्तिक स्वतंत्रता का नाश कर देगी और उसके विरुद्ध अनुच्छेद 21 कोई भी संरक्षण प्रदान नहीं कर पाएगा। क्योंकि उक्त अनुच्छेद द्वारा केवल यह प्रत्याभूत किया गया है कि किसी भी व्यक्ति को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के सिवाय उसको वैयक्तिक स्वतंत्रता से वंचित न किया जाएगा, अतः संविधान निर्माताओं ने अनुच्छेद 22 इस उद्देश्य से अधिनियमित किया है कि संसद् और राज्य विधानमण्डल निवारक निरोध सम्बन्धी विधि बनाने की बाबत अपनी शक्तियों का निर्बन्धित रूप में ही प्रयोग कर सकें जिससे कि व्यक्ति की वैयक्तिक स्वतंत्रता में अत्यधिक विधायी हस्तक्षेप या अवरोध न किया जा सके। अनुच्छेद 22 के खण्ड (3) से लेकर (7) तक ऐसे निर्बन्धन अधिरोपित करते हैं। हमारा सम्बन्ध केवल खण्ड (4) से लेकर खण्ड (7) तक से है। जो निम्न प्रकार हैं—

> (4) निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली कोई विधि किसी व्यक्ति को तीन महीने से अधिक कालावधि के लिए निरुद्ध किया जाना प्राधिकृत तब तक न करेगी जब तक कि—
>
> > (क) ऐसे व्यक्तियों से, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं, रह चुके हैं अथवा नियुक्त होने की अर्हता रखते हैं, मिल कर बनी मंत्रणा-मंडली ने तीन महीने की उक्त कालावधि की समाप्ति के पूर्व प्रतिवेदित नहीं किया है कि ऐसे निरोध के लिए उसकी राय में पर्याप्त कारण हैं ;

परन्तु इस उपखण्ड की कोई बात किसी व्यक्ति के, उस अधिकतम कालावधि से आगे, निरोध को प्राधिकृत न करेगी जो खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन संसद-निर्मित किसी विधि द्वारा विहित की गई है; अथवा

(ख) ऐसा व्यक्ति खण्ड (7) के उपखण्ड (क) और (ख) के अधीन संसद-निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अनुसार निरुद्ध नहीं है।

(5) निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन दिए गए आदेश के अनुसरण में जब कोई व्यक्ति निरुद्ध किया जाता है तब आदेश देने वाला प्राधिकारी यथाशक्य शीघ्र उस व्यक्ति को जिन आधारों पर वह आदेश दिया गया है उनको बताएगा तथा उस आदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन करने के लिए उसे शीघ्रातिशीघ्र अवसर देगा।

(6) खंड (5) की किसी बात से ऐसा आदेश, जैसा कि उस खंड में निर्दिष्ट है, देने वाले प्राधिकारी के लिए ऐसे तथ्यों को प्रकट करना आवश्यक नहीं होगा जिनका कि प्रकट करना ऐसा प्राधिकारी लोक हित के विरुद्ध समझता है।

(7) संसद विधि द्वारा विहित कर सकेगी कि—

(क) किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में किसी व्यक्ति को निवारक निरोध को उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन तीन महीने से अधिक कालावधि के लिए खंड (4) के उपखंड (क) के उपबन्धों के अनुसार मंत्रणा-मंडली की राय प्राप्त किए बिना निरुद्ध किया जा सकेगा;

(ख) किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में कितनी अधिकतम कालावधि के लिए कोई व्यक्ति निवारक निरोध उपबंधित करने वाली किसी विधि के अधीन निरुद्ध किया जा सकेगा; तथा

(ग) खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के अधीन की जाने वाली जांच में मंत्रणा-मंडली द्वारा अनुसरणीय प्रक्रिया क्या होगी।

खण्ड (4) और खण्ड (7) को संयुक्त रूप से पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि संसद् द्वारा या राज्य विधानमण्डल द्वारा अधिनियमित विधि किसी

व्यक्ति के तीन मास से अनधिक की कालावधि के निरोध के लिए प्राधिकृत करती है तो उसे इस सांविधानिक अपेक्षा के अलावा किसी अन्य अपेक्षा की पूर्ति नहीं करनी होगी कि वह विधि यथास्थिति संसद् और राज्य विधानमण्डल की विधायी क्षमता के अन्तर्गत हो। संविधान, संसद् और राज्य विधानमण्डल को भी, यह शक्ति प्रदान करता है कि वह बिना किसी निर्बन्धन के तीन मास तक की कालावधि के निरोध के लिए विधि द्वारा उपबन्धित कर सकता है। ऐसी शक्ति कदाचित् यह उपधारणा करके दी गई है इतने कम समय के लिए निरोध, जिसके विरुद्ध कोई अन्य रक्षोपाय उपबन्धित न किया गया हो, व्यवहारिक या प्रशासनिक दृष्टियों से न्यायोचित हो सकता है। किन्तु यदि विधि किसी दीर्घतर कालावधि के निरोध के लिए उपबन्ध करती है और ऐसी कालावधि तीन मास से अधिक है तो उसे कतिपय सांविधानिक रक्षोपायों का अनुपालन करना होगा। यह रक्षोपाय खण्ड (4) के उपखण्ड (क) और (ख) में उल्लिखित हैं। खण्ड 4 उपखण्ड (क) में यह अधिकथित है कि कोई भी विधि तीन मास से अधिक की कालावधि के निरोध की बाबत उपबन्ध तब तक न कर सकेगी जब तक सलाहकार बोर्ड ने, जो ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बना हो जो उसमें उल्लिखित अर्हताएं रखते हों, ऐसी तीन मास की कालावधि के अवसान से पूर्व यह प्रतिवेदित न कर दिया हो कि उसकी राय में ऐसे निरोध के लिए पर्याप्त कारण हैं। अतः यदि निरोध तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए उपबन्धित किया जाता है तो ऐसी विधि में सलाहकार बोर्ड को मामले निर्देशित करने की बाबत उपबन्ध होना चाहिए और उसमें तीन मास की कालावधि के अन्दर उसके द्वारा प्रतिवेदन की भी व्यवस्था होनी चाहिए। यदि सलाहकार बोर्ड यह राय देता है कि निरोध के लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं है तो सम्बन्धित व्यक्ति को तीन मास से लम्बी कालावधि के लिए निरुद्ध नहीं किया जा सकेगा। जब सलाहकार बोर्ड ने निरोध के पक्ष में ही अपनी राय दी हो तभी सम्बन्धित व्यक्ति को तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है। किन्तु ऐसी दशा में निरोध की कालावधि क्या होगी इसकी बाबत विनिश्चय निरोधकर्ता प्राधिकारी करेगा [देखिए—**पूरनलाल लखनपाल** बनाम **भारत संघ**[1]] एक बात ध्यान देने की है कि ऐसे निरोध की अधिकतम कालावधि की बाबत उपबन्ध परन्तुक में अधिकथित हैं। उसमें यह कहा गया है कि खण्ड (4) के खण्ड (क) में की कोई बात किसी भी व्यक्ति के खण्ड (7) के खण्ड (ख) के अधीन संसद् द्वारा निर्मित विधि द्वारा विहित अधिकतम कालावधि से अधिक लम्बी कालावधि के निरोध को प्राधिकृत न करेगी। अतः यह ध्यान देने की बात है कि खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) के अधीन दोहरे रक्षोपाय की व्यवस्था है।

[1] (1958) एस० सी० आर 460.

एक रक्षोपाय यह है कि सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप के बिना तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध नहीं किया जा सकता है और दूसरा रक्षोपाय यह है कि यदि सलाहकार बोर्ड की यह राय भी हो कि निरोध के लिए पर्याप्त कारण हैं तो भी संबंधित व्यक्ति संसद् द्वारा खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन निर्मित विधि द्वारा विहित अधिकतम कालावधि से आगे निरुद्ध न किया जा सकेगा। खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) में ऐसी आनुकल्पिक स्थिति का उल्लेख है जिसमें कि सलाहकार बोर्ड की राय अभिप्राप्त किए बिना भी सम्बन्धित व्यक्ति को तीन मास की कालावधि से अधिक के लिए निरुद्ध किया जा सकता है बशर्ते कि निरोध खण्ड (7) के उपखण्ड (क) और (ख) के अधीन संसद् द्वारा निर्मित विधि के उपबन्धों के अनुरूप हो। खण्ड (7) का उपखण्ड (क) संसद् को ऐसी विधि बनाने की शक्ति प्रदान करती है जिसमें वे परिस्थितियां विहित हों जिनके अधीन और जिसमें मामलों के प्रकार या वे प्रकार विहित हों जिनमें किसी व्यक्ति को सलाहकार बोर्ड की राय अभिप्राप्त किए बिना भी तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है और खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) में यह उपबन्धित है कि संसद् वह अधिकतम कालावधि विहित कर सकती है जिसके लिए किसी व्यक्ति या व्यक्तिवर्ग को निवारक निरोध सम्बन्धी विधि के अधीन निरुद्ध किया जा सकता है। यदि संसद् ने खण्ड (7) के उपखण्ड (क) और (ख) के अधीन कोई विधि बना दी है तो किसी भी व्यक्ति को सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप के बिना ही तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए ऐसी विधि के अनुसार निरुद्ध किया जा सकता है। प्रस्तुत पिटीशनों में हमारा इस प्रश्न से कोई सम्बन्ध नहीं है कि खण्ड (7) के उपखण्ड (क) का प्रविषय और विस्तार क्या है और इस सांविधानिक उपबन्ध द्वारा किस प्रकार की विधि अनुध्यात है। उक्त प्रश्न **शम्भूनाथ सरकार** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[1] में इस न्यायालय के समक्ष विनिश्चयार्थ उत्पन्न हुआ था। उक्त मामले में उक्त प्रश्न पर इस न्यायालय के सात न्यायाधिपतियों ने एक प्रमाणिक निर्णय दिया है। किन्तु हमें उस पर यहां विचार नहीं करना है। हमारा सम्बन्ध तो केवल खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) से है। जिस प्रश्न पर हमें विचार करना है वह यह है कि यदि खण्ड (7) के उपखण्ड (क) के अधीन तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरोध किया जाना है तो क्या खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन इस निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करने के लिए संसद् बाध्य है।

---

[1] (1973) एस० सी० सी० 856=[1973] 3 उम० नि० प० 411.

40. अब एक बात स्पष्ट है कि संसद् खण्ड (7) के उपखण्ड (क) के अधीन विधि बनाने के लिए बाध्य नहीं है। इस प्रकार बाध्य तो वह तभी होगा जब कि उसका आशय सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त किए बिना ही निरोध की कालावधि तीन मास से अधिक विहित करने का हो और यदि वह ऐसी कालावधि से अधिक निरोध के लिए व्यवस्था करना चाहती है तो उसे खण्ड (7) के उपखण्ड (क) के अधीन विधि बनानी होगी। यदि संसद् ऐसी विधि नहीं बनाती है तो खण्ड (4) का उपखण्ड (ख) प्रवृत्त नहीं होगा और तीन मास से अधिक की कालावधि का निरोध, चाहे वह संसदीय विधि के अधीन हो या राज्य-विधि के अधीन, सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त किए बिना अनुज्ञेय नहीं होगा। प्रत्यर्थियों की ओर से इस बाबत कोई विवाद नहीं किया गया है और वस्तुतः ऐसा कोई विवाद किया भी नहीं जा सकता था कि यदि संसद् ने खण्ड (7) के उपखण्ड (क) के अधीन कोई विधि अधिनियमित कर दी है तो उसके साथ में खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन संसद् द्वारा निर्मित विधि भी अधिनियमित की जानी चाहिए। खण्ड (7) के उपखण्ड (क) के अधीन विधि का अधिनियमन निष्फल होगा, यदि खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन कोई विधि नहीं बनाई गई है। खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के अधीन यथानुध्यात सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त किए बिना किसी भी व्यक्ति को तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध नहीं किया जा सकता है। अतः खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन संसद् द्वारा विधि का अधिनियमन बाध्यकर है, यदि निरोध सलाहकार बोर्ड के हस्तक्षेप के बिना तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए चालू रखा जाना है। इस अपेक्षा पर संविधान निर्माताओं का जोर देने का उद्देश्य केवल यह है कि यद्यपि "असाधारण परिस्थितियों और असाधारण प्रकार के मामलों में संसद् सलाहकार बोर्ड को मामला निर्देशित किए बिना तीन मास से अधिक की कालावधि के निरोध के लिए प्राधिकृत करने हेतु विधि बना सकती है तो भी ऐसे निरोध की कालावधि उस अधिकतम कालावधि से अधिक न होगी जो संसद् इस बाबत विनिर्दिष्ट करे। संसद् द्वारा अधिकतम कालावधि के विनिर्दिष्ट कर दिए जाने से निरोध की 'अधिकतम कालावधि' निश्चित हो जाती है। संविधान निर्माताओं ने वैयक्तिक स्वतन्त्रता को संरक्षण देने के लिए उक्त रक्षोपाय उपबन्धित किया है। यह स्पष्ट है कि संसद् द्वारा विनिर्दिष्ट की जाने वाली 'अधिकतम कालावधि' युक्तियुक्त ही होगी क्योंकि अन्यथा संसदीय विधि अनुच्छेद 19(1) खण्ड (क) और खण्ड (ख) की दृष्टि से अविधिमान्य हो जाएगी। इतना तो पूर्णतः स्पष्ट और निर्विवाद है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या ऐसी अधिकतम कालावधि के विनिर्देश की अध्यपेक्षा उस दशा में भी होगी जब

कि खण्ड (4) के खण्ड(क) के अधीन तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरोध किया जाता है। उक्त प्रश्न का उत्तर खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) और खण्ड (7) के उपखण्ड (क) और (ख) के सन्दर्भ में पठित खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के परन्तुक के सही निर्वचन पर निर्भर करता है।

41. चूंकि निर्वचन का प्रयोजन सम्बन्धित सांविधानिक उपबन्ध के वास्तविक अर्थ को सुनिश्चित करना है, अतः यह स्पष्ट है कि जो कुछ भी इस प्रक्रिया की दृष्टि से तार्किक रूप से सुसंगत है उस पर विचार विमर्श कर लिया जाना चाहिए। किसी समय यह धारणा थी कि प्रारूप संविधान पर वाद-विवाद के अनुक्रम में संविधान सभा के सदस्यों द्वारा किया गया भाषण पूर्णतः अग्राह्य हैं, क्योंकि उसे सांविधानिक उपबन्धों के निर्वचन के लिए बाह्य सहायता का रूप दिया गया था। किन्तु कुछ समय पश्चात् इस धारणा में तब्दीली हुई और पाश्चात्य देशों और संयुक्त राज्य अमेरिका के विधिवेत्ताओं के हाल ही के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है और परिणामस्वरूप उक्त सामग्री को अपवर्जित करने की बाबत ऐंगलो अमेरिकी विधि-शास्त्र का यथावत् रूप से अनुपालन में कमी हो गई है। क्रोफोर्ड ने अपनी कृति "स्टेट्यूटरी कांस्टिट्यूशन" के पृष्ठ 388 पर निम्नलिखित मत व्यक्त किया है—

> "निश्चय ही उक्त प्रश्न पर न्यायिक मत एकरूप नहीं है। इस सम्बन्ध में कुछ अमरीकी विनिश्चयों में यह कहा गया है कि सम्बन्धित अधिनियमिति का सामान्य इतिहास और अधिनियमन से पूर्व वाली प्रक्रियाएं, जिनमें मूल विधेयक के संशोधन और रूपान्तरण भी सम्मिलित हैं तथा विधायी समितियों के प्रतिवेदन विधानमण्डल के आशय को सुनिश्चित करने के लिए देखे जा सकते हैं, बशर्ते कि इस बाबत कोई सन्देह उत्पन्न हो किन्तु उन्होंने निश्चित रूप से यह अभिनिर्धारित भी किया है कि यदि अधिनियमिति के अर्थों में कोई असंदिग्धता न हो तो, विधायी इतिहास ग्राह्य न होगा।"

42. **मैसूर राज्य** बनाम **आर० वी० बिदप**[1] में उक्त सिद्धान्त की विधिमान्यता को स्वीकार करते हुए इस न्यायालय के न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर ने निर्वचन के दृष्टिकोण में उक्त परिवर्तन की ओर ध्यान दिया है। उक्त मामले में उन पूर्वतर विनिश्चयों में अधिकथित नियम के प्रति निर्देश करने के पश्चात्,

---

[1] ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 2555.

(निर्वचन के प्रयोजन के लिए विधायी कार्यवाहियों के प्रति निर्देश को अपवर्जित किया गया है) विद्वान् न्यायाधिपति ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है—

"उक्त अपवर्जन के नियम की विधिशास्त्रियों ने कृत्रिम कह कर उसकी आलोचना की है। शैक्षिक मत और यूरोप में प्रचलित पद्धति के झुकाव से यह प्रकट होता है कि चूंकि सम्बन्धित अधिनियमिति के निर्वचन का उद्देश्य उसके अर्थों की बाबत विनिश्चय करना है, अतः तार्किक दृष्टि से प्रत्येक सामग्री को ग्रहण किया जाना चाहिए। अभी हाल ही में एक प्रसिद्ध भारतीय विधिशास्त्री ने विधिक स्थिति का पुनर्विलोकन किया है और उन्होंने जस्टिस स्टोन और जस्टिस फ्रैंकफर्ट के मत से सहमति व्यक्त की है। यह निश्चित है कि कोई भी व्यक्ति यह नहीं कहता है कि ऐसी बाह्य सामग्री निश्चायक होनी चाहिए। किन्तु यह अवश्य कहा जाता है कि उसे ध्यान में लिया जा सकता है। ग्रन्थकारिता और निर्वचन को मिलाकर संदिग्धता दूर की जानी चाहिए और उन्हें परस्पर सहयोगी होना चाहिए। इस प्रस्थापना के लिए प्राधिकृत मत उपलब्ध है कि ऐसी सामग्री का आशय बड़ी सावधानीपूर्वक लिया जाना चाहिए और केवल तभी लिया जाना चाहिए जब कि कोई संदिग्धता या सन्देह उत्पन्न हुआ हो। ब्रिटेन के न्यायालयों में मान्य अपवर्जन के नियम को समाप्त करने की गम्भीर चेष्टा की गई है और अधिनियमिति के शब्दों के अर्थ लगाने में विधायी कार्यवाहियों और तत्समान अन्य सामग्रियों के प्रति निर्देश अधिक निर्भीकता से किया गया है। यदि अधिनियमिति की भाषा स्पष्ट है तो उसे अभिभावी होना चाहिए। किन्तु यदि वह संदिग्ध और विभिन्न उपबन्धों में सामन्जस्य की कमी है और कोई विशेष परिस्थितियां विद्यमान हैं तो बाह्य सहायता लेना, अर्थात्, अधिनियमिति के उद्देश्य, अधिनियमिति द्वारा दूर की जाने वाली बुराइयां, सामाजिक सन्दर्भ, ग्रन्थकार के वचन, और अन्य सामग्री की सहायता लेना विधिसम्मत होगा।"

अतः यह विनिश्चय करने के लिए, कि वर्तमान रूप में खण्ड (4) और खण्ड (7) के अधिनियमन की बाबत संविधान-निर्माताओं का क्या दृष्टिकोण था और उन्होंने उक्त खण्डों के अधिनियमन द्वारा किस उद्देश्य की प्राप्ति का प्रयत्न किया था, संविधान-सभा में हुए विचार-विमर्श के प्रति निर्देश करना विधिसम्मत है। जब संविधान-सभा ने प्रारूप-संविधान के खण्ड 15 को, जो अनुच्छेद 21 का तत्स्थानी है, अंगीकार किया था उस समय प्रारूप-संविधान में अनुच्छेद 22 का कोई भी तत्स्थानी खण्ड विद्यमान नहीं था। संविधान-सभा के

अधिकतर सदस्य जिसमें डा० अम्बेडकर भी सम्मिलित थे, खण्ड (7) की शब्दावली से पूर्णतः असन्तुष्ट थे और उनका यह मत था कि यथाअंगीकृत रूप में खण्ड 15 इस बाबत विधानमण्डल को अनियन्त्रित शक्ति प्रदान करता है कि वह विधि द्वारा यह उपबन्ध कर सकता है कि किसी भी व्यक्ति को किन्हीं भी परिस्थितियों में और ऐसी किसी भी कालावधि के लिए, जैसी वह ठीक समझे, निरुद्ध और गिरफ्तार किया जा सकता है। अतः डा० अम्बेडकर ने एक नया खण्ड 15क जोड़ा, जिसमें कुछ रक्षोपाय उपबन्धित किए गए। किन्तु जब उक्त खण्ड पर बहुत गम्भीर वाद-विवाद हुआ तो, यह पाया गया कि ऐसे रक्षोपाय पर्याप्त नहीं हैं। उक्त विचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुए डा० अम्बेडकर ने खण्ड 15क को संशोधित करके कुछ ऐसे सुझाव दिए जिन्हें बाद में प्रारूप समिति ने आगे पुनरीक्षित किया। पुनरीक्षण के दौरान प्रारूप समिति ने 15 और 15क को क्रमशः अनुच्छेद 21 और 22 बना दिया। तत्पश्चात् जब संविधान-सभा के समक्ष पुनरीक्षित प्रारूप-संविधान विचारार्थ पेश हुआ तो श्री कृष्णमाचारी ने प्रारूप समिति की ओर से दो संशोधन प्रस्तुत किए, जिन के द्वारा खण्ड (4) और खण्ड (7) के पुनः प्रारूपण की बात कही गई थी जिससे कि यह स्पष्टतः उपदर्शित हो जाए कि संसद् उस अधिकमत कालावधि की बाबत उपबन्ध करेगी जिसके लिए किसी को या किसी प्रकार या प्रकारों के व्यक्तियों को ऐसे निरोध की बाबत उपबन्ध करने वाली विधि द्वारा निरुद्ध किया जा सकता है; उन दशाओं में भी, जब कि सलाहकार बोर्ड ने तीन मास से अधिक के निरोध को अनुमोदित कर दिया हो, भारत में कोई भी प्राधिकारी किन्हीं भी परिस्थितियों में संसद् द्वारा अधिकथित 'अधिकतम कालावधि' के आगे किसी भी व्यक्ति को निरुद्ध करने का आदेश नहीं कर सकता है। इन संशोधनों का वास्तविक प्रभाव क्या होगा इसकी बाबत शंका व्यक्त करते हुए कुछ सदस्यों ने अपनी राय व्यक्त की थी किन्तु डा० अम्बेडकर ने शंकाओं का उत्तर देते हुए स्थिति स्पष्ट कर दी और संशोधित अनुच्छेद के प्रविषय को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया था—

> "पहली बात तो यह है कि प्रत्येक मामले में निवारक निरोध विधि द्वारा प्राधिकृत होना चाहिए। निरोध कार्यपालिका की इच्छा से नहीं किया जा सकता है।
>
> दूसरी बात यह है कि तीन मास से अधिक की कालावधि के निवारक निरोध का प्रत्येक मामला न्यायिक बोर्ड के समक्ष रखा जाना चाहिए, बशर्ते कि वह खण्ड (7) के उपखण्ड (क) के अधीन कार्य करते हुए संसद् द्वारा विहित मामलों में से एक मामला न हो और संसद् ने

1973(12) eILR(PAT) SC 114

विधि द्वारा यह उपबन्धित न कर दिया हो कि तीन मास से अधिक की कालावधि के निरोध के लिए उस मामले को प्राधिकृत कराने के लिए न्यायिक बोर्ड के समक्ष रखना आवश्यक नहीं है।

तीसरी बात यह है कि हर एक मामले में, चाहे ऐसा मामला न्यायिक बोर्ड के समक्ष रखे जाने की अपेक्षा की गई हो या न की गई हो संसद् को निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करनी होगी जिससे कि निवारक निरोध सम्बन्धी किसी विधि के अधीन निरुद्ध व्यक्ति को किसी अनिश्चित काल तक निरुद्ध न रखा जा सकेगा। निरोध की अधिकतम कालावधि विहित होनी ही चाहिए और उसकी बाबत उपबन्ध संसद् को विधि द्वारा करना है।

चौथी बात यह है कि उन मामलों में जिनकी बावत अनुच्छेद 22 द्वारा यह अपेक्षा की गई है कि वे न्यायिक बोर्ड के समक्ष रखे जाएं, बोर्ड द्वारा अनुसरित प्रक्रिया संसद् द्वारा अधिकथित की जाएगी।"

तत्पश्चात् संशोधनों को संविधान सभा ने स्वीकार कर लिया और उसका वर्तमान स्वरूप अनुच्छेद 22 है।

43. अतः इस बाबत कोई सन्देह नहीं रह जाता है कि संविधान निर्माताओं के अनुसार यह स्पष्टतः आशयित था कि यदि निरोध तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए किया जाता है, चाहे वह खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के अधीन हो या चाहे उपखण्ड (ख) के अधीन, संसद् को निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करनी होगी और यदि डा० अम्बेडकर के शब्दों में कहा जाए तो "निरोध की अधिकतम कालावधि सदैव ही विहित की जाएगी और उस बाबत विधान करने की अपेक्षा संसद् से की गई है।" अतः हमारे समक्ष जो समस्या उत्पन्न है उसका दायरा बहुत छोटा है अर्थात् क्या हम ऐसा निर्वचन स्वीकार करने को तैयार हैं जो संविधान निर्माताओं के आशय को प्रभावी बनाता है अथवा क्या हम उनके आशय को, सम्बन्धित उपबन्ध का अत्यन्त शाब्दिक निर्वचन करके, निष्फल करना चाहते हैं। क्या हम उन रक्षोपायों को संरक्षित रखना चाहते हैं जिन्हें कि संविधान निर्माताओं ने वैयक्तिक स्वतन्त्रा को संरक्षित रखने के उद्देश्य से अधिनियमित किया था अथवा क्या हम अर्थान्वियन का आश्रय लेकर संविधान निर्माताओं के आशय को निष्फल करना चाहते हैं ?

44. भाग्यवश खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के परन्तुक की भाषा इस प्रकार उलझी हुई नहीं है कि उसका निर्वचन इस प्रकार नहीं किया जा सकता है जिससे नागरिक बिना विचारण के कारागार में अनिश्चित काल के लिए बन्दी

रहने से सुरक्षित हो जाए। हम पहले उसकी भाषा की परीक्षा करेंगे किन्तु उससे पूर्व हम खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के उपबन्धों के उद्देश्य पर भी विचार करेंगे। इस उपबन्ध का आशय, जैसा कि हमने खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) के सम्बन्ध में दर्शित किया है, उन मामलों में अनिश्चित काल तक के निरोध के विरुद्ध रक्षोपाय या संरक्षण उपबन्धित करना था, जिनमें कि खण्ड (7) के उपखण्ड (क) के अधीन संसदीय विधान द्वारा यह प्राधिकृत किया गया हो कि मामला सलाहकार बोर्ड को निर्देशित किए बिना ही तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरोध किया जा सकता है अतः यदि खण्ड (7) के उपखण्ड (क) के अधीन संसद् द्वारा निर्मित विधि के अधीन तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरोध प्राधिकृत किया जाता है और वहां ऐसा संरक्षण या रक्षोपाय आवश्यक है तो इसके परिणामस्वरूप उस दशा में भी यह समान रूप से आवश्यक है कि जब निरोध खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के अधीन किया जाता है क्योंकि उस उपबन्ध के अधीन भी निरोध तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए किया जा सकता है। यह उपधारणा नहीं की जा सकती कि संविधान निर्माताओं ने कदाचित् यह सोचा होगा कि एक प्रकार के मामलों में किसी अनिश्चित काल तक का निरोध वैयक्तिक स्वतन्त्रता पर गम्भीर और अननुज्ञेय अतिक्रमण है जबकि दूसरे प्रकार के मामलों में बिना किसी रुकावट के ऐसा निरोध अनुज्ञात किया जा सकता है। सलाहकार बोर्ड को निर्देश से सम्बन्धित उपबन्ध निश्चित ही यह सुनिश्चित करता है कि निरोध के लिए पर्याप्त कारण मौजूद हैं। किन्तु जैसा **पूरनलाल लखनपाल** बनाम **भारत संघ**[1] में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि निरोध की कालावधि अवधारित करने के विषय पर सलाहकार बोर्ड को कोई शक्ति प्राप्त नहीं है और निरोध की अवधि क्या होगी इस बाबत विनिश्चय पूर्णतः निरोधकर्ता प्राधिकारी की शक्ति का विषय होगा। अतः जहां तक कि निरोध की कालावधि का सम्बन्ध है, सलाहकार बोर्ड को इस बाबत कोई भी नियन्त्रण या अधिकार प्राप्त नहीं है। निरोध की कालावधि के बारे में निरोधकर्ता प्राधिकारी की शक्ति खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) के अन्तर्गत आने वाले मामले में है। दोनों ही प्रकार के मामलों में अनिश्चित काल के निरोध की दशा में उक्त शक्ति का दुरुपयोग किया जा सकता है और वैयक्तिक स्वतन्त्रता की प्रत्याभूति को भ्रामक और अर्थहीन बनाया जा सकता है। इसी बुराई को दूर करने के लिए और अत्यधिक हस्तक्षेप द्वारा वैयक्तिक स्वतन्त्रता को संरक्षण प्रदान करने के लिए संविधान निर्माताओं ने खण्ड (7) का उपखण्ड (ख)

[1] (1958) एस० सी० आर० 460.

1973(12) eILR(PAT) SC 114

अधिनियमित किया है और तद्द्वारा यह उपबन्धित किया है कि संसद् ही निरोध की अधिकतम कालावधि नियत करेगी और इस कालावधि के आगे किसी भी व्यक्ति को किसी भी विधि के अधीन चाहे वह संसद् ने बनाई हो या राज्य विधानमण्डल ने, निरुद्ध नहीं किया जा सकता है। खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) में वर्णित रक्षोपायों के अधिनियमन की आवश्यकता के जो कारण हैं वे दोनों ही दशा में समान रूप से लागू होते हैं, अर्थात्, चाहे तीन मास से अधिक की कालावधि के निरोध के लिए प्राधिकार खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के अधीन दिया गया हो या खण्ड (7) के उपखण्ड (क) के अधीन। अतः यह युक्तियुक्त है कि जब निरोध खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के अधीन तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए किया जाना है, तो खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन संसद् द्वारा 'अधिकतम कालावधि' का रक्षोपाय विहित होना चाहिए, जिससे कि निरोध अनिश्चित काल के लिए न किया जा सके। यदि संसद् खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन कोई 'अधिकतम कालावधि' विहित नहीं करती है तो खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के अधीन तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरोध प्राधिकृत नहीं किया जा सकता है। यदि इसके प्रतिकूल दृष्टिकोण अपनाया जाता है तो इसका अर्थ यह होगा कि जब स्वयं संसद् खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के अधीन तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरोध प्राधिकृत करती है तब अधिकतम कालावधि विहित करना आवश्यक नहीं है और एक बार यदि सलाहकार बोर्ड निरोध के हक में अपनी राय दे देता है, तो राज्य विधानमण्डल किसी भी अनिश्चित कालावधि के लिए निरोध को प्राधिकृत कर सकता है। वास्तव में यह बड़ा खेदप्रद परिणाम होगा। वह विधानमण्डल को उस कालावधि की बाबत सभी प्रकार से निर्मुक्त कर देगा जो वह खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के अधीन निरोध के लिए प्राधिकृत करे और वह राज्यों को वैयक्तिक स्वतन्त्रता में अत्यधिक हस्तक्षेप करने के लिए मार्ग प्रशस्त कर देगा। मेरे विचार से सांविधानिक उपबन्ध का ऐसा आशय नहीं हो सकता है।

45. खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के परन्तुक में यह कहा गया है कि यद्यपि किसी व्यक्ति को सलाहकार बोर्ड की राय अभिप्राप्त करने के पश्चात् तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है तथापि खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन संसद् द्वारा निर्मित किसी विधि द्वारा विहित 'अधिकतम कालावधि' के आगे ऐसा निरोध चालू नहीं रह सकता। परन्तुक और खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के मुख्य उपबन्धों को संयुक्त रूप से पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि परन्तुक मुख्य उपबन्ध का एक अभिन्न

अंग है। इसका आशय मुख्य उपबन्ध के अधीन प्रदत्त निरोध की शक्ति की व्यापकता को कम करना है। अतः खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के अधीन निरोध की शक्ति के प्रविषय और विस्तार को परन्तुक और मुख्य उपबन्ध को एक अभिन्न अधिनियमिति के रूप में पढ़कर ही परिभाषित किया जा सकता है। दोनों से मिलकर संविधान निर्माताओं का आशय प्रकट होता है। एक को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है और इस प्रकार उसे प्रभावी नहीं बनाया जा सकता, भले ही दूसरा प्रवृत्त न होता हो। यदि परन्तुक प्रवृत्त नहीं होता है तो मुख्य उपबन्ध भी प्रवृत्त न हो सकेगा क्योंकि मुख्य उपबन्ध को परन्तुक द्वारा अधिरोपित निर्बन्धन के अन्तर्गत ही प्रवृत्त होना आशयित है। उपरोक्त कारणों के आधार पर यह विश्वास नहीं किया जा सकता है कि कदाचित् संविधान निर्माताओं का यह आशय रहा होगा कि तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध करने की शक्ति उस दशा में भी प्रयुक्त की जा सकती है जबकि परन्तुक द्वारा अधिरोपित निर्बन्धन विद्यमान नहीं हो। परन्तुक और मुख्य उपबन्ध एक ही अखण्ड योजना के भागरूप हैं और वे या तो दोनों एक साथ प्रवृत्त होंगे या फिर उनमें से कोई भी प्रवृत्त न हो सकेगा। उक्त उपबन्ध में परन्तुक का प्रयोग अपने सामान्य रूप में नहीं हुआ है। उसके द्वारा ऐसा सारभूत उपबन्ध अधिनियमित करना आशयित है जो निरोध की कालावधि की अधिकतम सीमा को अधिकथित करता है। यदि इस कारण कि खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन संसद् ने कोई 'अधिकतम कालावधि' विहित नहीं की है, निरोध की अधिकतम सीमा व्यक्त नहीं है, तो खण्ड (4) के उपखण्ड (क) में अधिनियमित उपबन्ध प्रवृत्त नहीं हो सकते और उस दशा में तीन मास से आगे की कालावधि के लिए निरोध चालू नहीं रह सकता, भले ही सलाहकार बोर्ड की तत्विषयक राय अभिप्राप्त कर ली गई हो। परन्तुक में स्पष्ट रूप से खण्ड (7 के) उपखण्ड (ख) के अधीन संसद् द्वारा निर्मित विधि के विद्यमान होने की बात अनुध्यात है और उसे खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के प्रवर्तन के लिए एक अनिवार्य तत्व बना दिया गया है। संविधान निर्माताओं ने खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के परन्तुक को अधिनियमित करके वही विधायी लक्ष्य प्राप्त किया है और इसी कारण उन्होंने खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) में "और उपखण्ड (ख)" पद प्रयुक्त किया है। विधायी पद्धति भिन्न है क्योंकि दो उपखण्डों की संरचना सम्बन्धी व्यवस्था भिन्न है। मेरे विचार से, खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के साथ पठित खण्ड (4) के उपखण्ड (क) और (ख) का यही सही अर्थान्वियन है। किसी भी दशा में ये अतिसम्भाव्य अर्थान्वियन हैं और यदि इससे संविधान निर्माताओं के आशय की पूर्ति होती है, और उसमें

1973(12) eILR(PAT) SC 114

किसी अनिश्चित कालावधि के निरोध को प्राधिकृत करने की बाबत विधान-मण्डल की शक्ति अन्तर्निहित है तो कोई कारण नहीं है कि हम ऐसे अर्थान्वयन को अधिमान न दें। हमें यह बात याद रखनी चाहिए कि हम ऐसा करने में संविधान की विवेचना करते हैं और यह संविधान ऐसा संविधान है जिसके द्वारा हमें प्रजातन्त्रात्मक गणराज्य सरकार प्राप्त हुई है और जिसके अन्तर्गत वैयक्तिक स्वतन्त्रता के अधिकार को व्यक्ति की अतिमूल्यवान् धृति मानी गई है। क्या अब उस दशा में हमें स्वतन्त्रता और स्वाधीनता को अधिमान नहीं देना चाहिए जब कि हम यह देखते हैं कि ऐसा अधिमान सांविधानिक उपबन्ध की भाषा के साथ कोई दुराग्रह किए बिना दिया जा सकता है। क्या हमें स्वतन्त्रतापूर्वक और निर्भयतापूर्वक आधार शिला रखने वाले महानुभावों के आशय को प्रभावी नहीं बनाना चाहिए और क्या हमें संविधान के उपबन्धों का ऐसे व्यापक और स्वतन्त्र रूप में निर्वचन नहीं करना चाहिए जिसकी बाबत संविधान निर्माताओं ने कल्पना की थी। हमारे लिए यह उचित नहीं होगा कि हम यन्त्रवत् और शब्दश: अर्थान्वयन करके संविधान निर्माताओं के आशय को निष्फल कर दें।

46. यह तर्क दिया जा सकता है कि इस रक्षोपाय का क्या मूल्य है, और वह वैयक्तिक स्वतन्त्रता की प्रत्याभूति को कैसे सशक्त करता है जब कि अधिकतम कालावधि का नियत किया जाना अनिवार्य नहीं है। वस्तुत: उस दशा में जब कि ऐसी कालावधि निरोधकर्त्ता के प्रसादानुसार घटाई या बढ़ाई जा सकती हो। हमारे विचार से यह तर्क विधिमान्य नहीं है। यह तर्क दो महत्वपूर्ण बातों की उपेक्षा करके ही दिया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) द्वारा यह स्पष्टत: दर्शित होता है कि यद्यपि अधिकतम कालावधि का नियत किया जाना संसद् के स्वविवेक पर आधारित है तथापि संविधान निर्माताओं ने इसे एक मूल्यवान रक्षोपाय माना है। क्योंकि अन्यथा खण्ड (7) के उपखण्ड (क) के अधीन संसद् द्वारा निर्मित विधि के अधीन तीन मास से अधिक की कालावधि के निरोध को 'अधिकतम कालावधि' विहित करने के लिए शर्त के रूप में अधिकथन न किया गया होता। उस दशा में भी, जब कि संसद् खण्ड (7) के उपखण्ड (क) के अधीन विधि बनाती है और तद्द्वारा तीन मास से अधिक की कालावधि के निरोध को प्राधिकृत करती है, संविधान में यह कहा गया है कि ऐसी विधि के प्रवर्तन के लिए संसद् को 'अधिकतम कालावधि' विहित करनी चाहिए। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान निर्माताओं ने इस रक्षोपाय को बहुत महत्व दिया है। भले ही निरोध की अधिकतम कालावधि संसद् को ही नियत करनी हो और परिणामस्वरूप सैद्धांतिक रूप से ऐसी कालावधि

संसद् के प्रसादानुसार समय-समय पर बदलती रह सकती है। अतः जब अधिकतम कालावधि के नियतन को संविधान निर्माताओं ने ऐसा मूल्यवान् रक्षोपाय माना है, जिसका अनुपालन खण्ड (7) के उपखण्ड (क) के अधीन संसद् द्वारा निर्मित विधि बनाने में किया जाना है और जिसके अधीन तीन मास से अधिक की कालावधि प्राधिकृत की जाती है, तो उस दशा में यह और भी आवश्यक और मूल्यवान् हो जाएगा जब कि संसदीय विधि की बजाय किसी राज्य-विधि के अधीन खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के अधीन तीन मास से अधिक की कालावधि के निरोध को प्राधिकृत किया जाता है। दूसरी बात यह है कि यदि अधिकतम कालावधि का नियत किया जाना अपेक्षित है तो संसद को अनिवार्यतः इस प्रश्न पर ध्यान देना होगा और जब वह ऐसा करती है तो यह निरापद रूप से उपधारणा की जा सकती है कि एक अत्यंत उत्तरदायी निकाय होने के नाते वह ऐसी अधिकतम कालावधि नियत करेगी जो युक्तियुक्त हो और यह कि वह सरकार द्वारा अनिश्चित काल के निरोध के विरुद्ध रक्षोपाय भी उपबंधित करेगी। यह सच है कि सैद्धांतिक रूप से स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि अधिकतम कालावधि के नियतन को संसद् मनमाने रूप से अपनी इच्छानुसार प्रभावित कर सकती है किन्तु व्यवहारिक दृष्टि से ऐसी संभावना बहुत संभव नहीं है क्योंकि उस पर प्रजातांत्रिक शक्तियों और लोक-मत का बहुत दबाव पड़ता है। साथ ही यदि नियत अधिकतम कालावधि अयुक्तियुक्त होगी तो न्यायालय उसे अनुच्छेद 19 के खण्ड (क) और (घ) के अतिक्रमण करने के कारण अवैध घोषित कर सकते हैं। अतः यह कहना ठीक नहीं है कि संसद् द्वारा अधिकतम कालावधि-नियतन एक भ्रामक रक्षोपाय है। कम से कम संविधान निर्माताओं का तो ऐसा विचार नहीं था।

47. उपरोक्त कारण मुझे अपने विद्वान् साथी न्यायाधिपति मैथ्यु के अग्रगण्य निर्णय से भिन्न मत व्यक्त करने के लिए विवश करते हैं। मेरे विचार से संसद् खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन अधिकतम कालावधि नियत करने या न करने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र हैं। वह ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं है। किन्तु यदि अधिकतम कालावधि विहित नहीं की जाती है तो न तो संसद् और न राज्य विधानमण्डल ही न तो खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के अधीन और न उपखण्ड (ख) के अधीन ही तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरोध प्राधिकृत कर सकते हैं। यदि संसद् या राज्य विधानमण्डल तीन मास से अधिक की कालावधि के निरोध को प्राधिकृत करना चाहते हैं तो वे ऐसा तब तक नहीं कर सकते जब तक कि संसद् खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन निरोध की कोई अधिकतम कालावधि नियत नहीं कर देती है। मैं यह जानता हूं

कि विद्यमान ग्रन्थकारों के ग्रन्थ में अभिव्यक्त मतों के प्रति निर्देश करना आम पद्धति नहीं है किन्तु मैं यह उल्लेख अवश्य करना चाहूंगा कि सीरवई ने अपनी पुस्तक "**कांस्टिट्यूशनल लॉ**" में उक्त विषय पर विचार करते हुए उक्त मार्ग को ही अपनाया है। (**कांस्टिट्यूशनल लॉ ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 450, पैरा 12·52**)।

48. अर्थान्वयन की दृष्टि से मेरा उक्त मत है किन्तु हमें इस प्रश्न पर भी विचार करना चाहिए कि क्या इस न्यायालय के कोई पूर्वतर ऐसे विनिश्चय हैं जो मुझे ऐसा करने से रोकते हैं। हमारे समक्ष तीन विनिश्चय उद्धृत किए गए हैं और अब मैं उनके प्रति निर्देश करूंगा। पहला विनिश्चय **गोपालन वाले मामले में**[1] दिया गया है जिसमें संविधान न्यायपीठ गठित करने वाले छह विद्वान् न्यायाधिपतियों ने निवारक निरोध अधिनियम, 1950 के कतिपय उपबंधों की विधिमान्यता के बारे में अलग-अलग निर्णय दिए हैं। मुख्य न्यायाधिपति कानिया के सिवाय किसी भी न्यायाधिपति ने प्रस्तुत मामले में उत्पन्न प्रश्न पर विचार नहीं किया है और न उसके बारे में कोई राय ही व्यक्त की है। मुख्य न्यायाधिपति कानिया ने ही इस सम्बन्ध में कुछ कहा है और उनका मत था : "उपखण्ड (ख) अनुज्ञात्मक है। संसद् के लिए यह बाध्यकर नहीं है कि वह कोई अधिकतम कालावधि विहित करे। तर्क यह दिया गया था कि इसके द्वारा संसद् को यह अनुज्ञात करने का अधिकार प्राप्त हो गया है कि वह किसी भी व्यक्ति के अनिश्चित काल तक निरोध के लिए अनुज्ञा दे सकती है। यदि यह अर्थान्वयन ठीक है तो यह उपखण्ड (7) की शब्दावली से उत्पन्न होता है और इस सम्बन्ध में न्यायालय कुछ भी नहीं कर सकते हैं।" यह ध्यान देने की बात है कि उक्त मत विद्वान् मुख्य न्यायाधिपति के आशय को व्यक्त करता है। उस प्रश्न पर कोई भी चर्चा नहीं की गई है और न उसके समर्थन में कोई कारण ही दिए गए हैं। अतः वह मत हमारे लिए आबद्ध कर नहीं है।

49. दूसरा विनिश्चय **कृष्णन् बनाम मद्रास राज्य**[2] में सांविधानिक न्यायपीठ ने दिया है। इस मामले में तीन मुख्य निर्णय दिए गए थे। पहला निर्णय न्यायाधिपति पातंजलि शास्त्री (जैसे कि वे उस समय थे) ने दिया था और उनके निर्णय से मुख्य न्यायाधिपति कानिया सहमत थे। न्यायाधिपति पातंजलि शास्त्री ने इस प्रश्न पर कोई भी विचार नहीं किया और उनका निर्णय इस प्रश्न पर कोई प्रकाश नहीं डालता। दूसरा निर्णय न्यायाधिपति महाजन (जैसे कि वे उस समय थे) का है और उनसे न्यायाधिपति एस० आर० दास (जैसे कि वे उस समय थे) सारतः सहमत थे। न्यायाधिपति महाजन ने निश्चय ही इस

[1] (1950) एस० सी० आर० 88.

[2] (1951) एस० सी० आर० 621.

प्रश्न पर विचार किया था। किन्तु उनके निर्णय के उन सुसंगत अंशों से यह स्पष्ट हो जाता है, जिन्हें मेरे साथी न्यायाधिपति अलगिरिस्वामी ने अपने निर्णय में उद्धृत किया है, कि उस न्यायालय के समक्ष प्रश्न उस रूप में नहीं उठाया गया था जिस रूप में कि वह हमारे समक्ष उठाया गया है। उस मामले में जो तर्क दिया गया था वह यह था कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (7) में प्रयुक्त "सकती है" पद को "करेगी" के भाव में समझा जाना चाहिए और इसलिए संसद् के लिए यह बाध्यकर अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वह अनुच्छेद 22 के खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन विधि बनाए। यह तर्क न्यायाधिपति महाजन ने स्वीकार कर दिया था। यह तर्क हमारी कोई सहायता नहीं कर सकता क्योंकि हमारे समक्ष पेश किए गए तर्कों से वह भिन्न है। साथ ही न्यायाधिपति महाजन ने यह माना था कि यह प्रश्न **गोपालन वाले मामले में**[1] दिए गए बहुमत विनिश्चय द्वारा निश्चित हो चुका है और इस तर्क का अवलम्ब मुख्य न्यायाधिपति कानिया ने लिया है जिसे कि हम ऊपर उद्धृत कर चुके हैं। किन्तु निश्चय ही यह कुछ गलतफहमी के कारण हुआ है क्योंकि, जैसा कि ऊपर बताया गया है, अन्य विद्वान् न्यायाधिपतियों ने इस बाबत अपना कोई मत अभिव्यक्त नहीं किया है और मुख्य न्यायाधिपति कानिया का मत, बहुमत विनिश्चय का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। किन्तु न्यायाधिपति महाजन द्वारा अभिव्यक्त मत से न्यायाधिपति एस० आर० दास ने ही सहमति प्रकट की थी और न्यायाधिपति बोस ने उक्त मत से पूर्णतः असहमति प्रकट की थी। न्यायाधिपति बोस ने अपने शक्तिशाली निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि अनुच्छेद 22 के खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन निरोध की अधिकतम कालावधि नियत करना संसद् के लिए बाध्यकर नहीं है तथापि यदि किसी व्यक्ति को तीन मास से अधिक की कालावधि तक निरुद्ध रखना हो तो संसद् को कोई अधिकतम कालावधि विहित करनी ही होगी। यही मार्ग मैंने भी अपनाया है। अतः यह विनिश्चय हमें कोई अन्य मत अपनाने के लिए विवश नहीं करता है।

50. अन्तिम विनिश्चय, जिसके प्रति मैं निर्देश करना चाहूंगा **पश्चिम बंगाल राज्य** बनाम **अशोक डे और अन्य**[2] में किया गया है। इस बाबत कोई विवाद नहीं कर सकता कि जिस रूप में विचाराधीन प्रश्न हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है उसी रूप में वह उक्त मामले में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। किन्तु यदि हम न्यायाधिपति दुआ के निर्णय का अवलम्बन करें और

---

[1] (1950) एस० सी० आर० 88.

[2] (1972) 1 एस० सी० सी० 199.

विशिष्टत: उनके निर्णय के उन अंशों का अवलोकन करें जो हमारे साथी न्यायाधिपति अलगिरिस्वामी ने अपने निर्णय में उद्धृत किए हैं, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि उस मामले में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत तर्क वही था जो कृष्णन् वाले मामले में दिया गया था, अर्थात् अनुच्छेद 22 के खण्ड (7) के प्रारंभिक भाग में "सकेगी" पद का अर्थ उपखण्ड (ख) और उपखण्ड (ग) के सम्बन्ध में "करेगी" लगाया जाना चाहिए। यद्यपि जहां तक कि उपखण्ड (क) का सम्बन्ध है, उसकी सामान्य अनुज्ञात्मक प्रकृति कायम बनी रहेगी और इसी तर्क को न्यायालय ने यह कह कर अस्वीकार कर दिया था कि "किन्हीं विशिष्ट बाध्यकर कारणों के अभाव" में इसे "न तो किसी सिद्धांत के आधार पर और न किसी पूर्व निर्णय के ही आधार पर समर्थन प्रदान किया जा सकता है।" हमारे समक्ष जो तर्क दिया गया है वह पूर्णत: भिन्न है। यह दलील नहीं दी गई है कि "सकेगी" को "करेगी" पढ़ा जाए। हमारे समक्ष वाला तर्क दूसरे दृष्टिकोण और मत पर आधारित है और ऐसा लगता है कि वह तर्क न्यायालय के समक्ष न तो प्रस्तुत किया गया है और न उस पर कोई चर्चा ही हुई है। साथ ही उक्त विनिश्चय चार न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने किया था। अतः वह हमें अपने मत से भिन्न मत अपनाने के लिए विवश नहीं कर सकता।

51. प्रस्तुत मामले में मूल रूप में यथाविद्यमान आन्तरिक सुरक्षा बनाए रखने का अधिनियम (जिसे आगे अधिनियम कहा गया है) की धारा 13 में यह उपबंध किया गया है कि धारा 12 के अधीन पुष्ट किए गए निरोध के निरोधादेश के अनुसरण में किसी भी व्यक्ति को निरोध की तारीख से 12 मास की कालावधि से अधिक के लिए निरुद्ध न किया जा सकेगा। सभी पक्षकारों ने यह तर्क दिया है कि असंशोधित धारा 13 द्वारा विहित 12 मास की कालावधि जो इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन किसी व्यक्ति को निरुद्ध करने की अधिकतम कालावधि है, अनुच्छेद 22 के खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन यथानुध्यात अधिकतम कालावधि है। किन्तु भारत रक्षा अधिनियम, 1971, जो 4 दिसम्बर, 1971 को प्रवृत्त हुआ है, की धारा 6 (घ) द्वारा उक्त अधिनियम की धारा 13 को इस प्रकार संशोधित कर दिया गया है कि निरोध की "अधिकतम कालावधि" "निरोध की तारीख से 12 महीने या भारत रक्षा अधिनियम, 1971 के पर्यवसान तक" "इनमें से जो भी पश्चात्वर्ती हो" होगी। भारत रक्षा अधिनियम, 1971 की धारा 1 (3) में उस अधिनियम की कालावधि अधिकथित है और उसमें यह कहा गया है कि अधिनियम आपात उद्घोषणा के दौरान और तत्पश्चात् छह मास की कालावधि तक प्रवृत्त रहेगा। यथासंशोधित धारा 13 यह उपबंधित करती है कि अधिनियम के अधीन निरोध

1973(12) eILR(PAT) SC 114

की अधिकतम कालावधि निरोध की तारीख से 12 मास या आपात की उद्घोषणा के समाप्त हो जाने के पश्चात् छह मास की कालावधि के अवसान तक की, इनमें से जो भी पश्चात्वर्ती हो, होगी। प्रश्न यह है कि क्या यथासंशोधित धारा 13 द्वारा विहित उक्त कालावधि को अनुच्छेद 22 के खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) में यथा प्रयुक्त अभिव्यक्त "अधिकतम कालावधि" मानी जा सकती है। पिटीशनरों का तर्क यह था कि संशोधित धारा 13 में विनिर्दिष्ट कालावधि अनिश्चित है क्योंकि यह नहीं बताया जा सकता है कि आपात की उद्घोषणा कब समाप्त होगी और इस कारण उसे ऐसी 'अधिकतम कालावधि" नहीं माना जा सकता है, जिससे कि अनुच्छेद 22 के खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) की आज्ञापकता का समाधान हो जाता हो। पिटीशनरों ने यह दलील दी कि चूंकि संसद् ने कोई अधिकतम कालावधि विहित नहीं की है, अतः (धारा 13 उस प्रयोजन के लिए अपर्याप्त होने के कारण) पिटीशनरों को तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध नहीं किया जा सकता है और इसलिए वे मुक्त होने के हकदार हैं। इस तर्क पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना आवश्यक है।

52. प्रश्न यह है कि उपखण्ड (7) के खण्ड (ख) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "अधिकतम कालावधि" का अर्थ क्या है। जब कोई कालावधि किसी ऐसी घटना के घटित होने के निर्देश में नियत की गई है जो घटित होनी ही है, किन्तु जिसके बारे में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह कब घटित होगी, उदाहरणार्थ आपात की समाप्ति अथवा किसी व्यक्ति की मृत्यु, तो क्या यह कहा जा सकता है कि वह नियत अधिकतम कालावधि खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अर्थान्तर्गत 'अधिकतम कालावधि' है। शार्टर आक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार "अधिकतम" शब्द का अर्थ है (किसी व्यक्ति का) उच्चतम प्राप्तव्य लक्ष्य या मात्र ; एक बाह्य सीमा "और" "कालावधि" शब्द का अर्थ है : "समय का अनुक्रम या विस्तार ; अवधि का समय"। अतः स्पष्ट व्याकरणिक अंग्रेजी की दृष्टि से "अधिकतम कालावधि" पद का अर्थ है "समय का उच्चतम या महत्तम विस्तार या शक्ति" जो अधिकतम सीमा नियत करता है और यह उच्चतम या महत्तम विस्तार या समय की परिधि किसी निश्चित तारीख के रूप में अथवा वर्षों, मासों या दिनों के रूप में या किसी घटना के घटित होने के निर्देश में नियत की जा सकती है। किन्तु नियतन की रीति चाहे जो कुछ भी हो, "अधिकतम कालावधि" एक निश्चित कालावधि होनी चाहिए। ऐसी कालावधि का माप अनिश्चित नहीं होना चाहिए। बाह्य सीमा निश्चित रूप से ज्ञात होनी चाहिए। अधिकतम सीमा को किसी घटना के निर्देश में विहित किया जा सकता है। किन्तु ऐसी घटना के घटित होने की तारीख अनिश्चित नहीं होनी चाहिए।

यह कह सकना संभव होना चाहिए कि ऐसी घटना समय की दृष्टि से अमुक निश्चित समय पर घटित होगी। यह कहना ही पर्याप्त नहीं है कि घटना निश्चित है और निश्चय ही घटित होगी। आवश्यक तो यह है कि समय का वह बिन्दु निश्चित होना चाहिए जब कि घटना घटनी है। उसी दशा में यह कहा जा सकता है कि निरोध की 'अधिकतम कालावधि' नियत कर दी गई है। वस्तुतः यह कहना मुश्किल है कि उस दशा में जब कि किसी को यह पता न हो कि अधिकतम कालावधि क्या होगी, "अधिकतम कालावधि" नियत कर दी गई है। वह पांच वर्ष की कालावधि भी हो सकती है और दस वर्ष की भी और इससे भी अधिक की। वह एक अनिश्चित कालावधि होगी। ऐसी किसी कालावधि को विधि द्वारा नियत "अधिकतम कालावधि" कैसे माना जा सकता है। "अधिकतम कालावधि" के विचार में एक निश्चितता की भावना होती है जब कोई अधिकतम कालावधि विहित की जाती है तो ऐसी कालावधि के विस्तार की या अवधि की मात्रा सुनिश्चित होनी आवश्यक है। यदि विस्तार या अवधि अनिश्चित है अथवा वह किसी विशिष्ट घटना के घटित होने पर आश्रित है तो ऐसी कालावधि का विहित किया जाना अनिश्चित निरोध के विरुद्ध कदापि निर्बन्धन नहीं हो सकता, क्योंकि इस प्रकार इस बाबत कोई गारन्टी उपलब्ध न होगी कि प्रश्नगत निरोध किसी निश्चित समय के बाद चालू न रहेगा। विधानमण्डल द्वारा प्राधिकृत निरोध की कालावधि ऐसी दशा में अनिश्चित होगी क्योंकि जिस घटना के निर्देश में कालावधि की माप की जानी है वह कब घटित होगी, यह बात अनिश्चित है। उससे खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) में अधिनियम अधिकतम कालावधि के विहित किए जाने की अपेक्षा के उद्देश्य और प्रयोजन को प्रभावी नही बनाया जा सकेगा।

53. इस प्रक्रम पर हम इस पक्ष पर विचार कर लें कि यदि हमारे उपरोक्त अर्थान्वियन से प्रतिकूल अर्थान्वियन किया जाता है तो उसका परिणाम क्या होगा। यह सच है कि बताए गए अर्थान्वियन का परिणाम अधिनियमिति के अर्थ में परिवर्तन नहीं करता है किन्तु वह उसके द्वारा उसका अर्थ निश्चय ही नियत कर सकता है। यदि मैं इस अर्थान्वियन को मान लूं कि अधिकतम कालावधि किसी घटना के निर्देश में विहित की जा सकती है—भले ही वह घटना ऐसी हो कि यद्यपि वह निश्चित तो हो फिर भी उसके बारे में निश्चिततापूर्वक यह पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता हो कि वह कब घटित होगी—और इसी अर्थान्वियन के आधार पर आपातकाल निर्देश में अधिकतम कालावधि के नियत किए जाने को पुष्ट किया जा सकता है और अन्यथा नहीं। तार्किक दृष्टि से इसका अर्थ यह होगा कि "अधिकतम कालावधि" निरुद्ध व्यक्ति के जीवनपर्यन्त

के निर्देश में भी नियत की जा सकती है और यदि ऐसी अधिकतम कालावधि नियत की जाती है तो विधानमण्डल उसके जीवनपर्यन्त के निरोध के लिए निरोध प्राधिकृत कर सकता है। किन्तु यह बहुत विस्मयकारी और अनिष्टकर स्थिति होगी। इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता है कि संविधान निर्माताओं ने, जिन्होंने कि ब्रिटिश शासकों के अधीन बहुत लम्बी कालावधि तक जेल काट है, वैयक्तिक स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने की आवश्यकता के बारे में इतने अनासक्त हो गए होंगे कि उन्होंने संसद् को किसी भी व्यक्ति के बिना विचारण के आजीवन निरोध आदिष्ट करने के लिए निरंक पत्र सौंप दिया होगा। बिना विचारण के निरोध करने की शक्ति स्वयं ही एक गम्भीर शक्ति है और वह केवल लोक सुरक्षा और लोक व्यवस्था के हित में ही न्यायोचित ठहराई जा सकती है। एक स्वतंत्र समाज में उसे आवश्यक बुराई मान कर स्वीकार किया जाता है। किन्तु बिना विचारण के किसी व्यक्ति को आजीवन निरुद्ध करने की शक्ति विधि के शासन द्वारा शासित प्रजातंत्र में सोची भी नहीं जा सकती। यह एक निरंकुश शक्ति है जो स्वतंत्रता और स्वाधीनता को नष्ट करती है और हमारी सांविधानिक व्यवस्था में उसे कोई स्थान नहीं दिया जा सकता। ऐसी शक्ति प्रदान करना प्रजातंत्रीय जीवन को नष्ट करना है और उससे एक स्वतंत्र समाज की अतिप्रिय वस्तु का नाश होता है और राज्य में एक ऐसी निरंकुश शक्ति निहित हो जाती है जो विधि के शासन के प्रतिकूल है। उससे वैयक्तिक स्वतंत्रता के मूल प्रत्याभूति का मर्म और अन्तर्वस्तु ही नष्ट हो जाती है और वह केवल निर्जीव वस्तु रह जाती है। इसका अर्थ तो यह होगा मानो संविधान इस भूमि के समस्त निवासियों से न्यायाधिपति बोस के शब्दों में निम्नलिखित बात कहता है—

> "जहां तक कि निरोध की अवधि का सम्बन्ध है, आपको पूरी तौर से स्वतंत्रता दी जाती है। मैं यह प्रतिभूत करता हूं कि आपको तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए तब तक निरुद्ध न किया जाएगा जब तक कि संसद् या तो सामान्यतः या विशिष्ट प्रकार के मामलों की बाबत अन्यथा निर्दिष्ट न करे; किन्तु हम संसद् को यह शक्ति देते हैं कि वह उक्त प्रत्याभूति को पूर्णतः नष्ट कर सकती है, बशर्ते कि वह ऐसा करना चाहे और उसके ऐसे करने पर कोई भी रुकावट या निर्बन्धन न होगा। यद्यपि हम संसद् को निरोध की अधिकतम कालावधि विहित करने के लिए प्राधिकृत करते हैं, यदि वह ऐसा करना चाहे तो, तथापि, हम उसे इस बात के लिए बाध्य नहीं करते हैं कि वह ऐसा करे और हम उसे ऐसा विधान पारित करने के लिए प्राधिकृत करते हैं जो किसी व्यक्ति या प्राधिकारी

को, यहां तक कि पुलिस कांस्टेबिल को भी, ऐसा करने के लिए सशक्त करता हो। वह पुलिस कांस्टेबिल आपको गिरफ्तार कर सकता है और पुलिस कांस्टेबिल के रूप में ही आपको निरुद्ध रख सकता है और आपको गिरफ्तार करके तब तक निरुद्ध रखे रख सकता है जब तक कि वह चाहे। यहां तक कि वह आपको जीवनपर्यन्त निरुद्ध रख सकता है जिससे कि आप जेल में पड़े-पड़े सड़ें और वहां आपकी मृत्यु हो जाए। जैसा कि बेसिली में हुआ था।"

ऐसे अर्थान्वियन से मैं घृणा करता हूं—मेरे विचार से अधिकतम कालावधि किसी निश्चित तारीख अथवा, वर्षों, मासों या दिनों के संदर्भ में नियत की जानी चाहिए अथवा वह ऐसी घटना के संदर्भ में नियत की जानी चाहिए जिसके बारे में निश्चिततापूर्वक यह पूर्वानुमान किया जा सकता हो कि समय की दृष्टि से एक निश्चित समय पर वह घटित होगी—जिससे कि यह पूर्णतया सुनिश्चित हो सके कि निरोध की कालावधि का क्या अर्थ है—और वह कालावधि अनिश्चित नहीं है। किन्तु यह भी निश्चित है कि इस प्रकार विहित अधिकतम कालावधि युक्तियुक्त होनी चाहिए नहीं तो वह अनुच्छेद 19 के खण्ड (क) और (घ) का अतिक्रमण करेगी। ऐसा अर्थान्वियन तीन मास की कालावधि से अधिक के निरोध के विरुद्ध दो रक्षोपाय सुनिश्चित करता है; एक रक्षोपाय अनुच्छेद 22 के खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) में वर्णित है और दूसरा अनुच्छेद 19 के खण्ड (क) और (घ) में उल्लिखित है।

54. मुझे इस बात का ध्यान है कि बिना विचारण के किसी व्यक्ति को निरुद्ध करने की शक्ति राज्य के अनुरक्षण के लिए और लोक सुरक्षा या व्यवस्था बनाए रखने के लिए अति-आवश्यक है और इसलिए जब कोई आपात का समय हो तो यह समीचीन समझा जा सकता है कि राज्य को बिना विचारण के किसी भी व्यक्ति को आपात की कालावधि के दौरान निरुद्ध रखने की शक्ति होनी चाहिए और ऐसी शक्ति के प्रदान किए जाने को अयुक्तियुक्त नहीं माना जा सकता। किन्तु इस अर्थान्वियन के आधार पर "अधिकतम कालावधि" पद का ऐसा कोई अर्थ स्वीकार नहीं किया जा सकता है जिससे कि वैयक्तिक स्वतंत्रता की मूल प्रत्याभूति संकटग्रस्त हो जाए। यह याद रखने की बात है कि संविधान द्वारा न केवल आपातकाल के लिए उपबंध किया गया है वरन् सामान्य काल के लिए भी उपबंध किया गया है और इसलिए खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) जैसे किसी सांविधानिक उपबंध का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि वह कोई आपात सम्बन्धी उपबंध है। निवारक निरोध सम्बन्धी विधि अनिवार्यतः आपात की उपज नहीं है। वस्तुतः वह हमारे देश में संविधान के प्रवर्तन से आज तक

1973(12) eILR(PAT) SC 114

किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है। अतः खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) का निर्वचन अर्थान्वयन के ऐसे किन्हीं सिद्धांतों के अनुसार नहीं किया जाना चाहिए जिन्हें कि युद्धकालीन या आपातकालीन विधान निर्वचन में स्वीकार किया जाता है। उसका अर्थान्वयन अन्य किसी भी सांविधानिक उपबंध के अनुरूप किया जा सकता है और ऐसा अर्थान्वयन करने में उसके उद्देश्य और आशय को ध्यान में रखा जाना चाहिए। यह तथ्य कि आज हम आपातकाल में जीवनयापन कर रहे हैं, सांविधानिक उपबंध के हमारे निर्वचन को प्रभावित नहीं कर सकता है। सांविधानिक उपबंध का अर्थान्वयन समान होना चाहिए, चाहे वह आपातकाल में किया जाए या चाहे शान्तिकाल में। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मि० जस्टिस ब्रैण्डीज़ ने **ह्विटने वाले मामले**[1] में कहा है, अर्थात्, "जिन्होंने हमारे लिए स्वतंत्रता क्रांति द्वारा प्राप्त की है वे डरपोक नहीं थे। उन्हें राजनैतिक परिणामों का भय नहीं था। उन्होंने आदर्शों को स्वतंत्रता की बलि नहीं चढ़ाई।" हम मि० जस्टिस मर्फी के उन शब्दों को भी याद कर सकते हैं जो उन्होंने **ब्रिजेज़ वाले मामले**[2] में कहे थे, अर्थात्, "इस राष्ट्र की शक्ति को कमजोर उन व्यक्तियों ने अधिक किया है जो दूसरों की स्वतंत्रता को नष्ट करते हैं। और उन लोगों ने उसकी शक्ति को कमजोर कम किया है जिन्हें स्वतंत्रतापूर्वक विचार करने और अपने अन्तःकरण के अनुसार कार्य करने की छूट प्राप्त थी।" साथ ही मैं यह भी बता दूं कि जो निर्वचन मैं स्वीकार करता हूं वह किसी भी रूप में आपातकाल में उत्पन्न स्थिति का मुकाबला करने के लिए निरोध की बाबत राज्य की शक्ति को क्षीण नहीं करता। संसद् किसी भी समय मेरे द्वारा निर्वचन किए गए रूप में उपर्युक्त "अधिकतम कालावधि" विहित कर सकती है और ऐसी "अधिकतम कालावधि" के लिए निरोध प्राधिकृत कर सकती है। यदि ऐसी अधिकतम कालावधि के अन्त में किसी निरुद्ध व्यक्ति को मुक्त किया जाता है और उस समय विद्यमान सुसंगत तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, उसे आगे भी निरुद्ध करना आवश्यक समझा जाए तो निरोधकर्ता प्राधिकारी ऐसे व्यक्ति को पुनः निरुद्ध कर सकता है परन्तु शर्त (जो एक महत्वपूर्ण रक्षोपाय होगी) यह होगी कि यदि मामला खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के अन्तर्गत आता हो तो सलाहकार बोर्ड ने यह राय अभिव्यक्त कर दी हो कि ऐसे आगे निरोध के लिए पर्याप्त कारण हैं।

55. अतः मेरा यह मत है कि प्रस्तुत मामले में किसी भी निश्चिततापूर्वक यह पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता है कि आपात कब समाप्त होगी, अतः

---

[1] (1926) 274 यू० एस० 357-380.

[2] (1945) 326 यू० एस० 376.

अधिनियम की धारा 13 द्वारा विहित कालावधि खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अर्थान्तर्गत "अधिकतम कालावधि" नहीं मानी जा सकती। इसका परिणाम यह हुआ कि संसद् ने खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन यथानुध्यात निरोध की अधिकतम कालावधि विहित नहीं की है और यदि ऐसी बात है तो अधिनियम के उपबंधों के अधीन किसी भी व्यक्ति को तीन मास से अधिक की कालावधि के लिए निरुद्ध नहीं किया जा सकता है।

56. तदनुसार मैं प्रस्तुत पिटीशन मंजूर करता हूं और पिटीशनरों को तुरन्त मुक्त कर दिए जाने का आह्वान करता हूं, क्योंकि उनमें से प्रत्येक के निरोध की तारीख से अब तक तीन मास की कालावधि समाप्त हो चुकी है।

आदेश

57. बहुमत की राय के अनुसार पिटीशनरों की दलीलें अस्वीकार की जाती हैं। पिटीशन समुचित न्यायपीठ द्वारा निपटाए जाने के लिए सूचीगत किए जाएं।

पिटीशन खारिज किए गए।

———